बाल विज्ञान पत्रिका

चकमक

फरवरी, 1990

रू. 4.00

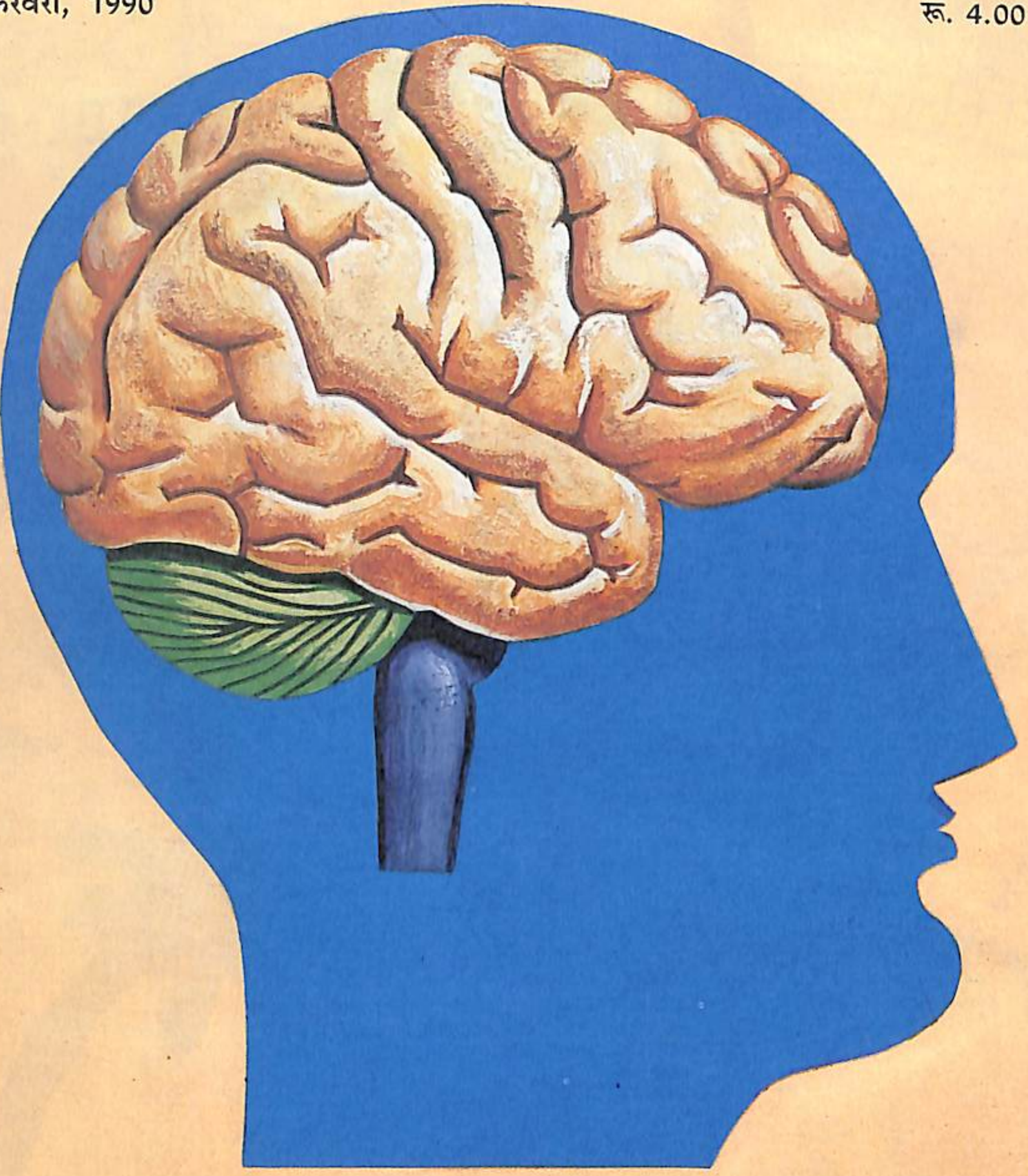

क्या रखा है खोपड़ी में?

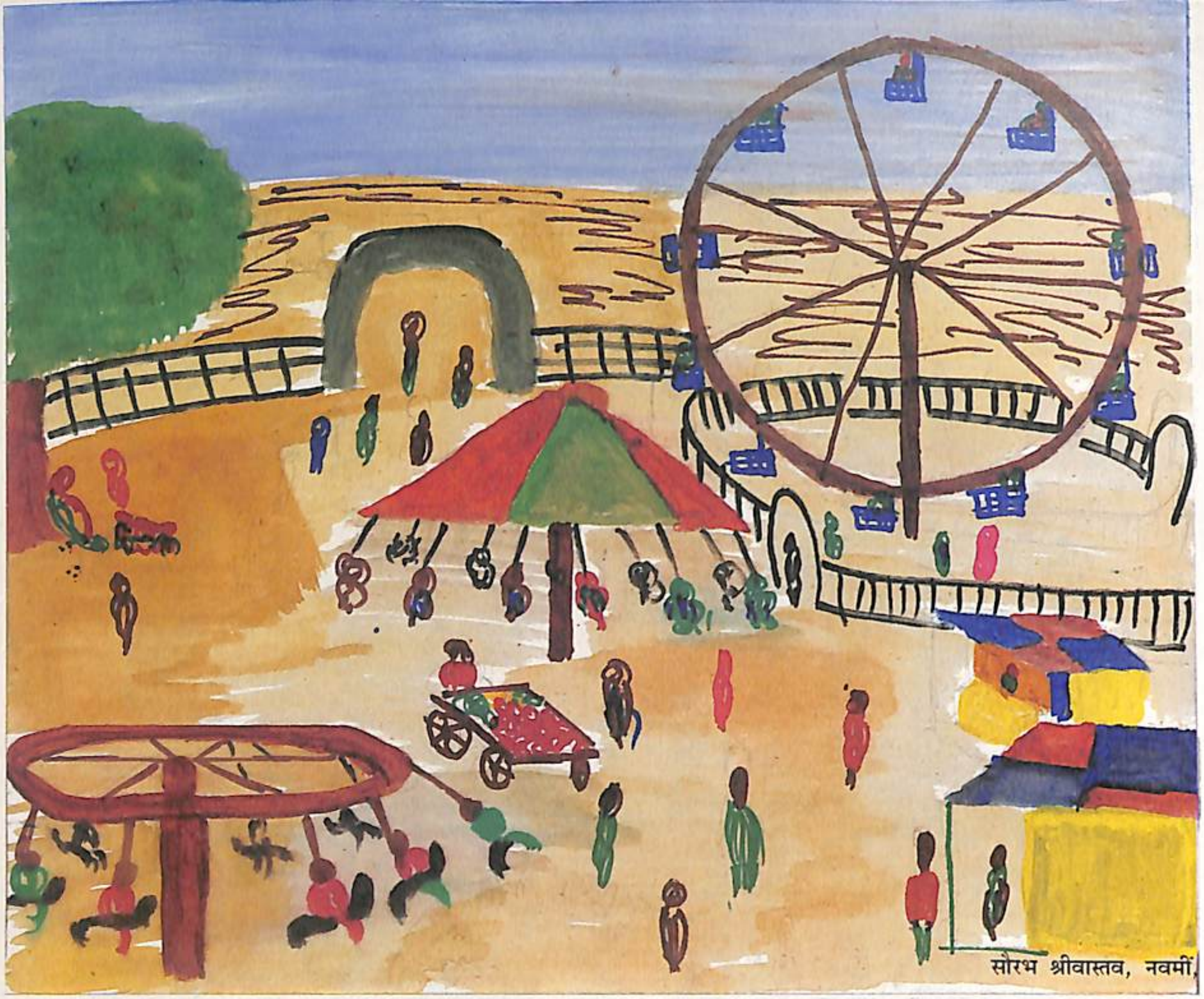

सौरभ श्रीवास्तव, नवमीं, भोपाल

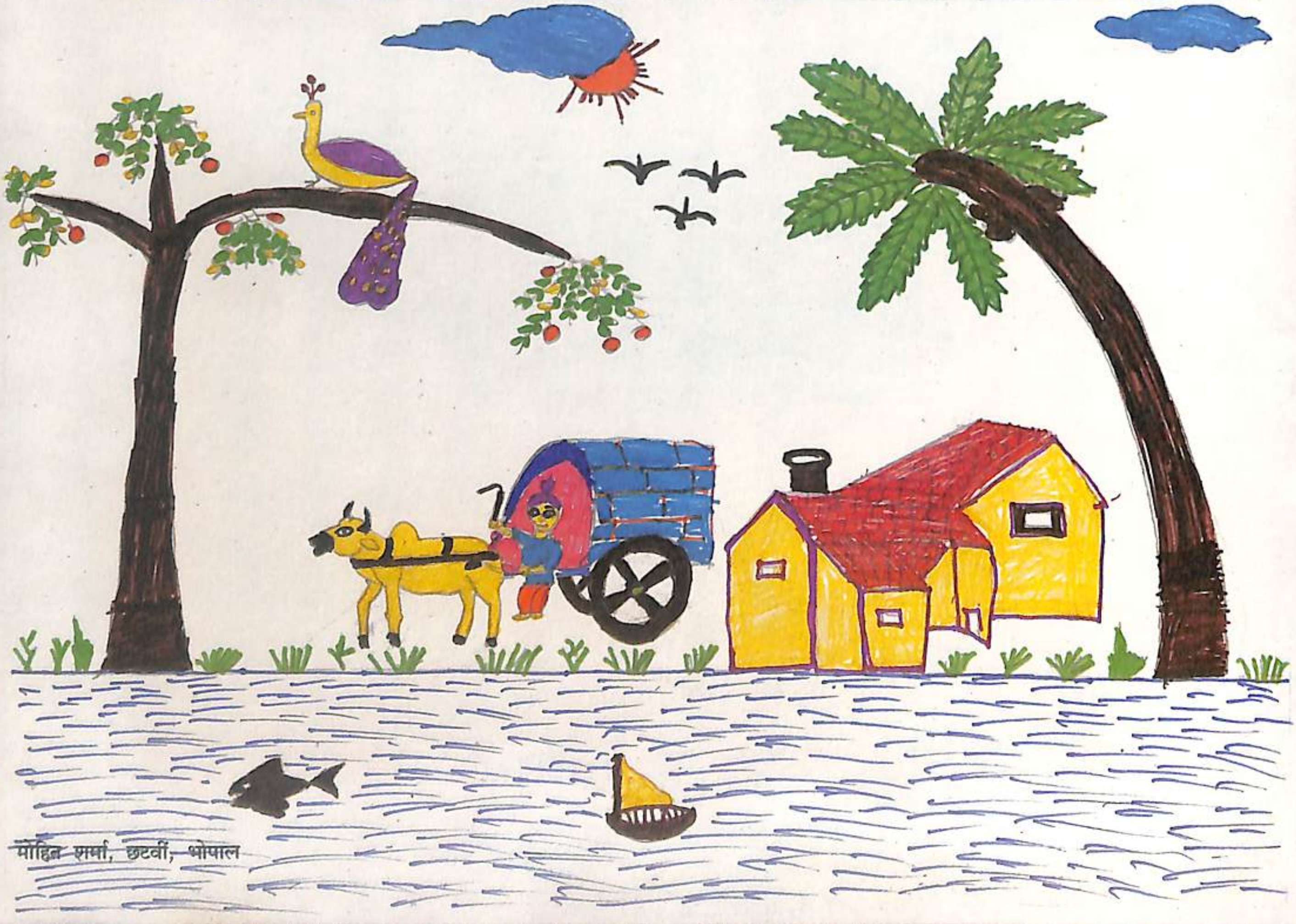

मोहित शर्मा, छटवीं, भोपाल

चकमक बाल विज्ञान पत्रिका
वर्ष 5 अंक 8 फरवरी, 1990

संपादक
विनोद रायना

सह-संपादक
राजेश उत्साही

कला
जया विवेक

उत्पादन/वितरण
हिमांशु बिस्वास, कमलसिंह

विज्ञापन
इला मिश्र

चकमक का चंदा
एक प्रति : चार रुपए
छमाही : बीस रुपए
वार्षिक : चालीस रुपए
डाक खर्च मुफ्त
चंदा, मनीऑर्डर या बैंक ड्राफ्ट से एकलव्य के नाम पर भेजें।
कृपया चेक न भेजें।

पत्र/चंदा/रचना भेजने का पता :
एकलव्य,
ई-1/208, अरेरा कॉलोनी,
भोपाल-462 016 (म.प्र.)

काग़ज़ : 'यूनिसेफ' के सौजन्य से।
सहयोग : राष्ट्रीय विज्ञान व प्रौद्योगिकी संचार परिषद् (विज्ञान व प्रौद्योगिकी विभाग, नई दिल्ली)

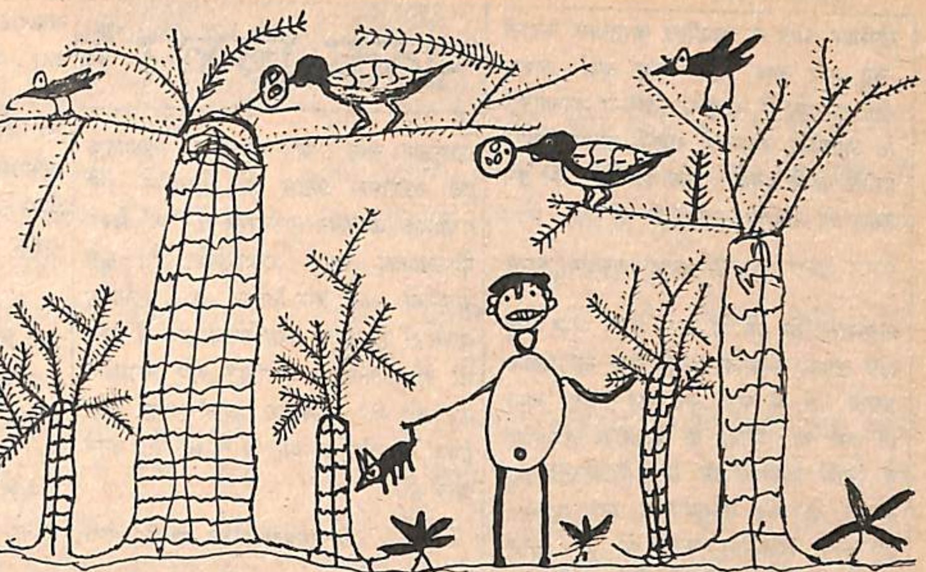

दामोदरसिंह, पांचवीं, उंचिया, दतिया

इस अंक में...

पाठक लिखते हैं 2
मेरापन्ना 3
कविताएं 7
किस्सा खोपड़ियों की नपाई का 8
तुम भी बनाओ 12
कविता : रात सपने में 13
कहानी : चांद सूरज को चुराता है 14
काग़ज़ का खेल 17
मैं हूं तुम्हारा मस्तिष्क 18
चलते-फिरते तथ्य 20
धारावाहिक : भूगर्भ की यात्रा-5 22
दुनिया पक्षियों की 26
कविता : ठंडी हो गई चाय 27
कहानी : कर्तव्य 28
सवालीराम 31
अपनी प्रयोगशाला 32
मज़ेदार धारावाहिक : गुदड़ीलाल 34
माथापच्ची 38

आवरण : जया

एकलव्य एक स्वैच्छिक संस्था है जो शिक्षा, जनविज्ञान एवं अन्य क्षेत्रों में कार्यरत है। चकमक, एकलव्य द्वारा प्रकाशित अव्यवसायिक पत्रिका है। चकमक का उद्देश्य बच्चों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति, कल्पनाशीलता, कौशल और सोच को स्थानीय परिवेश में विकसित करना है।

पाठक लिखते हैं

दिसंबर अंक में प्रकाशित वास्तविक कहानी 'चेंद्रू और बाघ' बेहद पसंद आई। कृपया इसी तारतम्य में आगे भी विभिन्न जनजातियों के आंतरिक जीवन में रोशनी डालते रहिए। इसके पहले इतनी रोचक शैली में मैंने इस तरह की सामग्री नहीं पढ़ी थी।

☐ राजेंद्र मालवीय, हरसूद

चकमक के बारे में बहुत पढ़ा, सुना परंतु जब उसका अंक देखा तो लगा कि जितना उसके बारे में पढ़ा सुना वह बहुत, बहुत ही कम था। शिक्षा के वैज्ञानिक दृष्टिकोण के साथ बालकों के मन में प्रकृति एवं समाज के प्रति सकारात्मक एवं मानवीय दृष्टिकोण विकसित करने के जो तरीके चकमक और एकलव्य ने अपनाए हैं उनके आगे सरकारी संस्थाओं के सेमीनार्स, गोष्ठियां, पत्र वाचन और कार्यशालाएं थोथा दिखावा और सरकारी पैसे का निरा अपव्यय मात्र लगती हैं। इन बड़ी संस्थाओं को एकलव्य और चकमक से प्रेरणा लेकर अपने कार्यक्रमों, आयोजनों एवं नई परियोजनाओं में सीधे-सीधे बालकों एवं ठेठ देहात में कार्य करने वाले शिक्षकों को अधिकाधिक संख्या में बराबर का भागीदार बनाना चाहिए!

☐ जितेंद्र शंकर बजाड़, भीचोर (राजस्थान)

अक्टूबर अंक देखा। बच्चों की साहित्यिक एवं कलात्मक प्रतिभा को पहचानने, उन्हें यथोचित प्रोत्साहन-मार्गदर्शन देने की दिशा में आपका प्रयास अभिनंदनीय है। नन्हे नागरिकों को ज्ञान-विज्ञान की नवीनतम जानकारी सुरुचिपूर्ण तथा रोचक ढंग से देकर भी आप अपेक्षित मनोरंजन और ज्ञानवर्धन कर रहे हैं। आकर्षक छपाई-सफाई तथा सहज चित्रांकन बालमन में ललक पैदा करने वाले हैं।

☐ भगवती प्रसाद द्विवेदी, पटना

दिसंबर अंक में भगवती प्रसाद द्विवेदी की कविता सुंदर बन पड़ी है। 'नन्हे गुदड़ीलाल के कारनामे' निःसंदेह मज़ेदार धारावाहिक है। 'तिलचट्टे का जीवन' तथा 'चेंद्रू और बाघ' की कहानी उसमें दिए रंगीन चित्र चकमक को चमका रहे हैं, बधाई! साथ ही 'व्हेल का गला कैसे बना!' और भी काफी कुछ प्रभावित करता है। आप चकमक के माध्यम से बच्चों की प्रतिभा के विकास हेतु जो जेहाद छेड़े हुए हैं वह स्तुतिनीय है।

☐ अशोक अंजुम, अलीगढ़

चकमक के दिसंबर अंक में 'चेंद्रू और बाघ : एक अनोखी कहानी' सर्वाधिक अच्छी लगी। माथापच्ची के अंतर्गत वर्ग पहेली हल करने में हमेशा की तरह आनंद आया। आप से अनुरोध है कि कृपया चकमक के किसी आगामी अंक में पाठकों को उपहार स्वरूप नववर्ष का कैलेंडर अवश्य दें।

☐ योगेश मिश्र, टेंगनमाड़ा, बिलासपुर

मुझे विज्ञान चकमक पसंद आई। यह विज्ञान चकमक मुझे पहली बार जब मिली तब मैं नवोदय विद्यालय के विषय में ट्यूशन गया था। जब मैं घर जा रहा था तब मुझे सर ने चकमक पढ़ने के लिए दी। मुझे चकमक पढ़ना, कार्टून देखना बहुत पसंद है।

☐ अखिल गुप्ता, पांचवीं, महेश्वर

चकमक का अक्टूबर अंक देखकर प्रसन्नता हुई। आकर्षक आवरण के साथ अंदर भी अच्छी सामग्री है। यह पत्रिका बालोपयोगी एवं उद्देश्यपूर्ण है।

☐ कुमारी सरिता बंजारे, सहायक शिक्षिका
प्रा. कन्या शाला, बुड़ार, सरगुजा

मैंने आपकी पत्रिका देखी। बड़ी अच्छी लगी। बच्चों के चित्र पत्रिका को बड़ी शोभा और अर्थ देते हैं।

☐ शोभा भागवत, गरवारे बालभवन, पुणे

चकमक प्राथमिक शालाओं में

यह आप जानते हैं कि चकमक सितंबर, 89 से मध्यप्रदेश की प्राथमिक शालाओं में ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड योजना के अंतर्गत जा रही है।

हमारे पास प्रतिदिन ऐसे पत्र आ रहे हैं कि हमारी शाला में चकमक नहीं आ रही है तुरंत भेजें। इस संबंध में एक-दो बातें हम कहना चाहते हैं—

(1) चकमक अभी केवल सत्र 87-88 में ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड योजना में चुनी गई शालाओं में ही जा रही है। कृपया अन्य शालाएं अपने विभाग से पत्र-व्यवहार करें।

(2) हमें अभी तक 27 शैक्षणिक ज़िलों के डाक पते प्राप्त हुए हैं। अभी इतने ही ज़िलों के पते प्राप्त होने शेष हैं। इसलिए जब तक सभी ज़िलों के पते प्राप्त नहीं हो जाते, तब तक प्राथमिक शालाओं की प्रतियां प्रत्येक शैक्षणिक ज़िले के ज़िला शिक्षा अधिकारी या उपसंचालक शिक्षा के कार्यालय में ही भेजी जाती रहेंगी। अतः आप अपनी शाला की प्रति इन अधिकारियों से प्राप्त करें।

(3) यह भी निवेदन है कि अपने शैक्षणिक ज़िले के प्राथमिक स्कूलों की सूची हम तक पहुंचवाने का प्रयास करें।

— संपादक

पिछले 24 दिसंबर, 89 को भोपाल की एक सांस्कृतिक संस्था 'कौटुम्बी' ने एक चित्रकला प्रतियोगिता का आयोजन किया था।

चित्र प्रतियोगिता स्थल पर ही बनाने थे। चित्र बनाने के लिए विषय सुझाए गए थे। आयु के हिसाब से दो वर्ग भी बनाए गए थे। एक 8 से 12 वर्ष का और दूसरा 12 से 16 वर्ष का। प्रतियोगिता में बने चित्रों में से पांच इस अंक में आवरण दो, तीन तथा चार पर तुम देख सकते हो।

आज़ादी की नुक्ती

15 अगस्त के कारण हमने एक दिन पहले से कपड़े धो रखे थे। 15 अगस्त के दिन हमने सबेरे 5 बजे उठकर मुंह हाथ धोये और नहाया। फिर हमने चाय पी और उसके बाद हम ड्रेस पहन कर, जूते मौज़े पहनकर बढ़िया तैयार होकर स्कूल गए।

वहां हम थोड़े घूमे फिरे और फूटे खाए इतने में सर आ गए और कहने लगे चलो लाइन में लगो। हम लाइन में लग गए। एक मोड़ा हमरी लाइन में लगो हमने बाके दो चार करारे हाथ जमाए इत्ते में बो मासाब के पास पहुंच गओ। मासाब से बा ने कही कि मासाब मोहे एक मोड़ा ने मार दओ तब मासाब मेरे पीछे दौड़े तई हमने भग दओ और सिंधी कालोनी की गलियों में घूमत रहे और बुद्धा के खेत में से हीट के गल्ले बाज़ार पहुंचे। भां पे भाषण भये। भाषण सुन-सुन के हमरो दिमाग़ पच गओ। भाषण ख़तम भये हम सब स्कूल आए। हम लाइन में लगे नुकती बंट रही थी।

फिर बोई मोड़ा मिल गओ। बो फिर हमसे उलझन लगो हमने बाके इत्तो मारो इत्तो मारो कि बाहे बेहोश कर दओ। हमें एक पुड़िया नुकती मिली। उत्तीसी नुकती के पीछे हम दिन भर परेशान रहे और नुकती खात-खात घर आ गए।

☐ राजनारायण दुबे, पिपरिया (बालचौपाल)

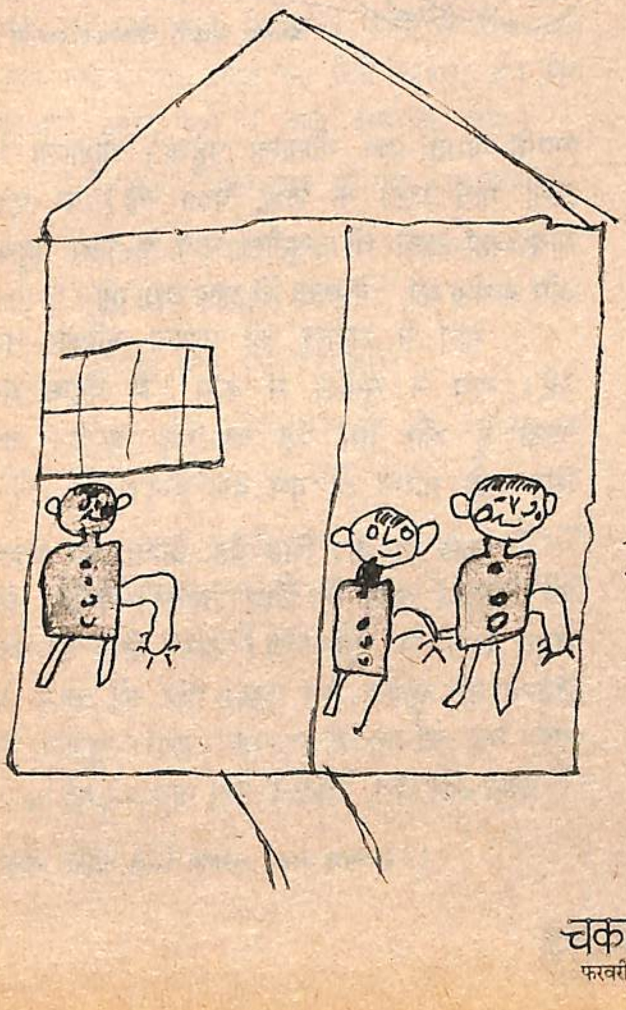

अमित, नानतिन बाड़ी स्कूल, भीमताल, नैनीताल

सुनील का सपना

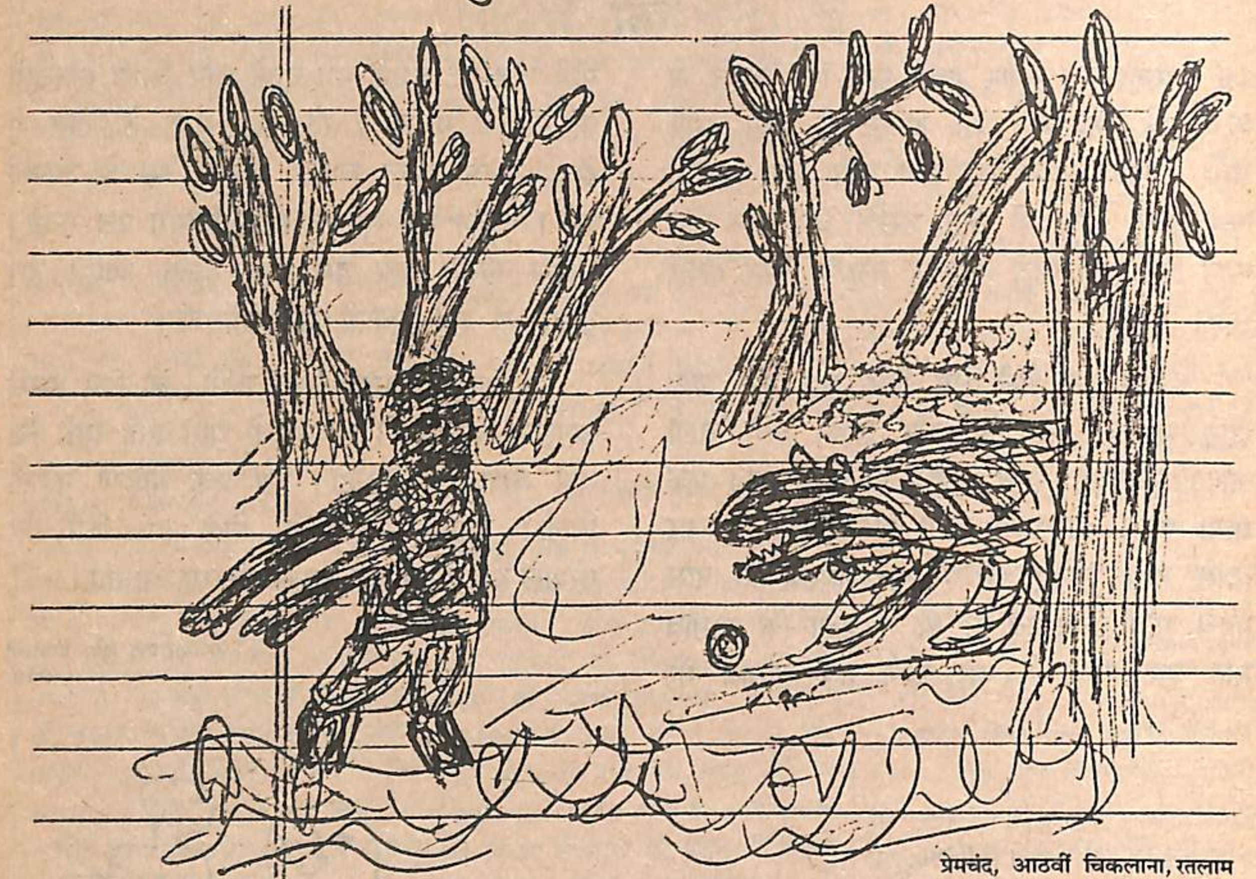

प्रेमचंद, आठवीं चिकलाना, रतलाम

किसी गांव में सुनील नाम का लड़का रहता था। वह हर रात को सपना देखा करता था। एक रात उसने सपना देखा कि वह एक तालाब में नहाने गया है। पानी में घुसा कि एक मगरमच्छ ने उसके पैर को पकड़कर खींच लिया। उसने निगलने के लिए मुंह खोला कि सुनील का पैर छूट गया।

सुनील तालाब से निकलकर जल्दी-जल्दी कपड़े पहनकर वहां से भागा। भागते-भागते अपने गांव के मैदान में पहुंचा। उस मैदान में एक सर्प था। सर्प को देखकर फिर जंगल की तरफ भागने लगा। उसी जंगल में सिंह था। सिंह बहुत दिन से भूखा था। उसने देखा कि लड़का भागा जा रहा है। सुनील ने देखा कि सिंह मुझे खाने को आ रहा है। फिर वहां से भागा। भागते-भागते एक गौशाला पहुंचा। गौशाला में सभी गायें चरने के लिए चली गईं। पर एक गाय वहां खड़ी थी। सुनील गाय के पास पहुंचा और प्रार्थना की, ''हे माता मेरे प्राण बचा लो।''

गाय ने सुनील की प्रार्थना स्वीकार कर ली। गाय ने सुनील से कहा ''मैं मेंढक बन जाती हूं और तुम पेड़ पर चढ़ जाओ। जब सिंह मुझे मारेगा तो तुम हंस देना।''

कुछ देर बाद सिंह वहां आया और मेंढक को देखकर खाने के लिए लपका। क्योंकि वह बहुत दिनों से भूखा था। उसने जैसे ही पंजा उठाया कि सुनील हंस पड़ा। सिंह को शरम आ गई, वह लज्जित होकर भाग गया। सुनील पेड़ से उतरा और गाय, मेंढक से फिर गाय बन गई।

☐ देवप्रसाद यादव, सातवीं, करही बाज़ार, रायपुर

मुन्ना का अंधविश्वास

प्रातःकाल उठकर जब मैं घर के सामने गेट के पास पहुंचा, तो देखा कि आज का अख़बार आया ही नहीं। खैर... मैं वापस घर में जा ही रहा था कि किसी ने आवाज़ दी और अख़बार लौटाया। मैं उसकी तरफ क्षण भर देखता रहा, क्योंकि आज शायद पहली बार मुन्ना ने अख़बार पढ़ा था। मैंने उससे पूछा, "क्या देखना था तुम्हें।"

उसने कहा, "राशिफल।"

उत्तर सुनकर मैं समझ गया कि इसने अभी भी अंधविश्वास का साथ नहीं छोड़ा है। मैं सोचने लगा किसी तरह इसको समझाना होगा कि अंधविश्वास करना ठीक नहीं है।

मैं अपने मित्र जयंत के पास गया और मुन्ना को सबक़ सिखाने के लिए कोई तरक़ीब सुझाने के लिए कहा। जयंत ने कहा, "हां, वो मुझे भी एक दिन विद्यालय जाने से रोक रहा था। कहता था आज का दिन अशुभ है। मत जाओ। आज कुछ न कुछ अमंगल होगा।"

मैंने कहा, "फिर कुछ अमंगल हुआ क्या?"

जयंत ने जवाब दिया, "अमंगल! नहीं तो बल्कि मुझे तो शाबासी मिली।"

"किस बात की शाबासी?"

"अरे मैंने, समझ-समझ के साध्य को साध्य (हल) किया था न!"

मैंने कहा, "मित्र अब इस मुन्ना के दिमाग़ में जो राशिफल का फितूर भरा है उसे सिद्ध करके साध्य करो तो जानूं।"

जयंत ने कहा, "ठीक बात है।" और कुछ गहन चिंतन में डूब गया। बोला, "कल जब मुन्ना फिर से राशिफल देखने आएगा तो मुझे बुला लेना।"

फिर हम अपने-अपने घर चले गए। फिर विद्यालय में मैंने जैसे ही जयंत को देखा तो पूछा, "क्यों कोई तरकीब सूझी क्या?"

उसने कहा, "वह राशिफल में विश्वास रखता है तो रामायण पढ़ने में रुचि होगी। रुचि न हो तो भी सुनी तो होगी ही उसने।"

मैंने कहा, "अवश्य।"

उसने कहा, "तो समझो, आधा हल मिल गया।"

मैं उसकी बात समझ तो न सका पर मैंने उससे क़हा, "इस कार्य में यदि तुम्हें मेरी मदद की आवश्यकता हो तो अवश्य कहना।"

अब अगला दिन आया। मैं उत्सुकता से जयंत के घर गया और उसे अपने घर ले आया। थोड़ी ही देर मुन्ना कल की तरह राशिफ़ल देखने आया।

जैसे ही मुन्ना ने राशिफल देखने के लिए अख़बार उठाया मित्र जयंत ने अपनी नाक में लकड़ी घुसा ली और ज़ोर से छींका। मुन्ना ने अख़बार रख दिया। जयंत बोल पड़ा, "रावण की नगरी कितनी सुंदर होगी, पूरी सोने की थी।"

मुन्ना बोला, "हूं होगी सोने की, पर रावण का चरित्र सोने जैसा नहीं था। उसने सीताजी का हरण करके अपने चरित्र को कलंकित कर लिया था।"

जयंत बोला, "अरे वह तो महाज्ञानी, महापंडित था। उसे बहुत से शास्त्रों का ज्ञान था।"

अब मुन्ना को क्रोध आना शुरू हो गया। वह बार-बार रावण की बढ़ाई कैसे सुने। अतः फिर बोल उठा, "महाज्ञानी हो या महापंडित, उसे वह अपने दैनिक जीवन में कहां प्रयोग करता

था। हां यदि वह उसे अपने जीवन में सार्थक बनाता तो कोई बात थी। दूसरी ओर श्रीराम को देखो। जो कहते थे, वही करते थे। वचन देने के बाद चाहे जान चली जाए, पर वचन नहीं टूटने देते थे।''

मित्र जयंत ने तो हल खोज ही लिया था। वह मुन्ना से कहने लगा, ''यानि तुम भी सतकर्म, कर्त्तव्य पालन और वचन के पक्के इंसान पर श्रृद्धा रखते हो।''

मुन्ना बोला, ''हां, अवश्य ही ऐसे लोग ख़्याति प्राप्त करते हैं। आखिर सत्य की ही जीत होती है।''

जयंत बोला, ''तो तुम भी अच्छे काम करो। अभी तुम्हारा काम है पढ़ाई करना, तो पढ़ाई करो। राशिफल क्यों देखते रहते हो?''

इतना कहना ही था कि मुन्ना ने राशिफल देखना बंद कर अपने घर का रास्ता लिया।

☐ कमलेश खैरिया, दसवीं, भोपाल

आलू का परांठा

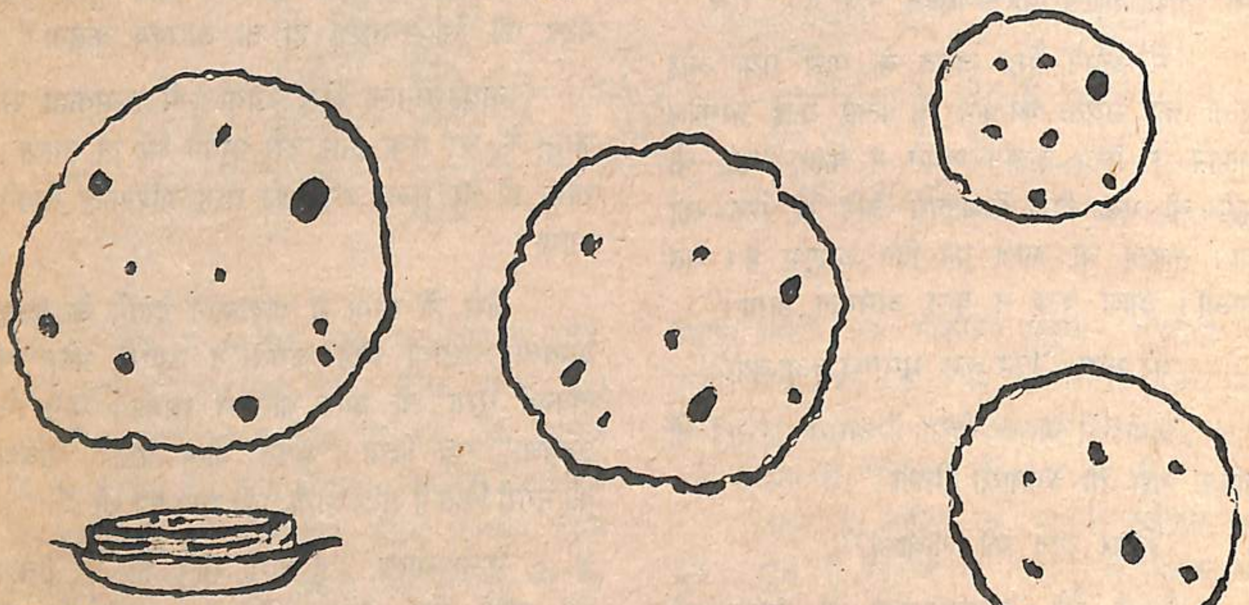

सुरेश, पांचवी, सवाई माधोपुर।

आलू का परांठा करता है तमाशा
आलू का परांठा जल जल जाता
सेंकने में इसको हाथ जल जाता
पर खाने में खूब मज़ा आता
छुन-छुन तवे पे शोर मचाता
गरम-गरम खाने से मुंह जल जाता
मुंह में पहुंच ये खुल-खुल जाता
पेट में जाकर शैतानी खूब मचाता।

☐ *श्वेता पारीख (पांचवीं) सवाई माधोपुर*
(फुलवारी)

कहीं पर खा ली एक गाय ने चरखी-चरखी घास,
मत पूछो फिर मुझसे यह कैसी लगी थी प्यास।

दो घूंट में पी डाला उसने, कुंआ भर पानी,
लेकिन देखो बात अजीब, प्यास अभी न मानी!

कुंआ छोड़ के भागी गाय, नदी में जो मुंह डाला,
तीन घूंट में, देखा हमने, तट खाली कर डाला।

नदी छोड़ के निकली थी वो दूर समुंदर पार,
एक घूंट तो ले चुकी है अभी बचे हैं चार!

एक अनोखी गाय

हेंड पंप पर शेर

हेंड पंप पर खड़ा हुआ था
एक सुनहरा शेर!
मारे प्यास के
सिकुड़ गया था
उसका लंबा पेट!

वहां पे आया टिड्डा ज्यों ही
दिखा वो प्यारा शेर
दिया जो धक्का
पंप से निकला
पानी तीन एक सेर!

पिया जो पानी मोटा हो गया
उसका लंबा पेट
फिर भी यारो
टिड्डे के संग
उड़ा सुनहरा शेर।

□ सुबीर शुक्ला
सभी चित्र : जया

किस्सा खोपड़ियों की नपाई का

दादी बनियान बुन रही थी नन्नू के लिए। नीले रंग की बनियान थी। जब बनियान का गला बुन चुकी तो दादी ने नन्नू को पहनाकर देखी।

"अरे, गला तो इसके सिर से उतर ही नहीं रहा! यह कैसे? इस मोड़े का सिर इतना बड़ा कबसे हो गया।" दादी ने प्यार से कोसते हुआ कहा।

तभी छोटी सावनिया कूदती हुई आई और झट बनियान में अपनी खोपड़ी घुसाकर बोली, "यह बनियान तो अब मेरी हो गई। देखो मुझे तो बिलकुल ठीक है।"

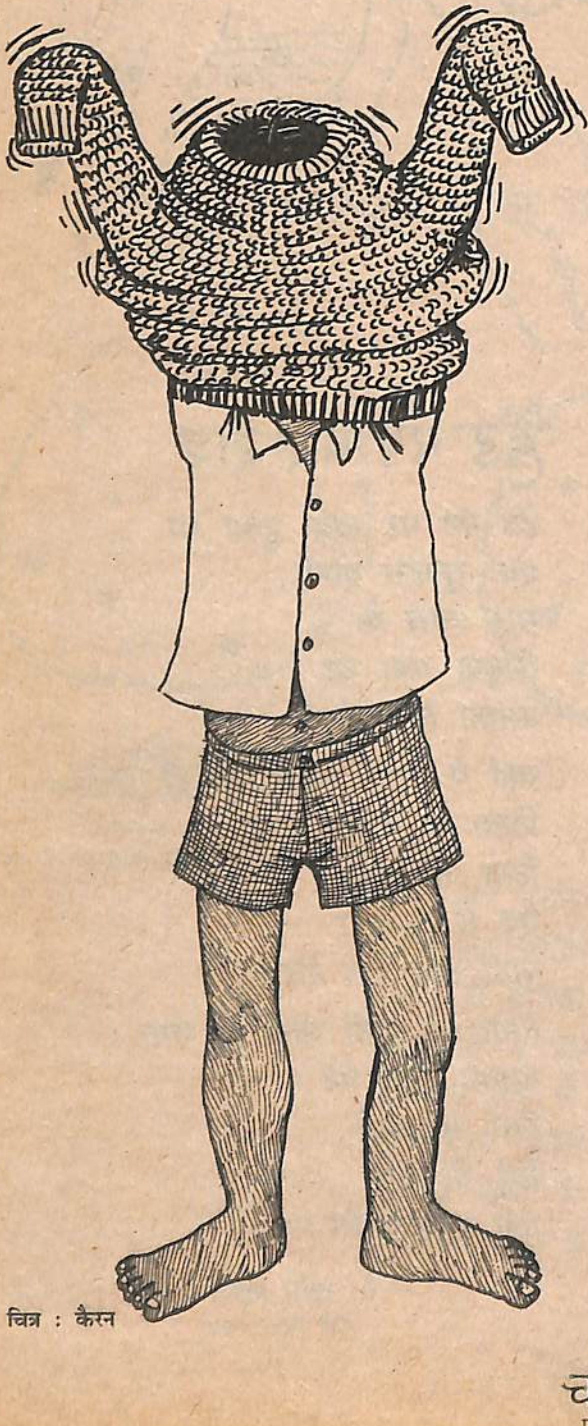

चित्र : कैरन

नन्नू ने गुस्से से बनियान हथिया ली और बहन को चिढ़ाते हुए कहा, "तू तो निरी बुद्दू है। इत्ती छोटी-सी तो खोपड़ी है। भला तुझे बनियान क्यों मिले। दिमाग़ तो मेरा बड़ा है। नई-नई बढ़िया चीज़ें मुझे ही मिलनी चाहिए। तेरे लिए तो बस-ठेंगा।"

खोपड़ियों को लेकर ऐसी नोंक-झोंक हंसी-मज़ाक तो तुम्हारे बीच भी कई बार हुई होगी। खोपड़ी बड़ी तो दिमाग़ बड़ा और अच्छा—ऐसा तुमने कई बार सुना होगा। पर वास्तव में सच्चाई क्या है? सोचो, क्या तुम्हें ऐसा लगता है कि छोटे सिर वाले लोग कम बुद्धिमान होते हैं?

कुछ इसी प्रकार की बात बहुत पहले कुछ वैज्ञानिकों के मन में भी आई थी और उन्होंने वैज्ञानिक तरीकों से इस बात को सिद्ध भी करना चाहा था। पर इस बात को पहले से ही सही मानकर चलने का हठ या इच्छा ही उनकी वैज्ञानिकता को ले डूबी। कैसे-कैसे वे अपने ही वहम के शिकार होते गए और ग़ैर वैज्ञानिक तरीकों में उलझते गए—यह अपने आप में एक रोचक कहानी है। पर इस रोचक कहानी के कुछ पहलू गंभीर भी हैं। विज्ञान का झूठा सहारा लेकर ग़रीब या 'कमज़ोर' लोगों को नीचा दिखाने की कोशिश इतिहास में कई बार हुई है। समाज में तो ऐसा होता ही रहता है, पर जब विज्ञान का ठप्पा इस पर लग जाए तो मामला और ख़तरनाक हो जाता है।

खोपड़ियां नापने का सिलसिला काफ़ी पुराना है—लगभग 150 साल पुराना। उस समय अमरीका के कई जाने-माने डॉक्टरों तथा वैज्ञानिकों ने अलग-अलग खोपड़ियां इकट्ठी कर रखी थीं। अमरीकी गोरे लोगों की, काले लोगों की और वहां पहले से ही बसे हुए आदिवासियों—रेड इंडियन की। ये खोपड़ियां उन्होंने प्रदर्शन या शौक़ में इकट्ठी नहीं की थीं। वे वैज्ञानिक, जो स्वयं गोरी चमड़ी वाले थे, इन खोपड़ियों को नापकर अलग-अलग लोगों के दिमाग़ की जांच करना चाहते थे। अब तुम पूछोगे कि भला खोपड़ी नापकर उस मरे हुए व्यक्ति के दिमाग़ की जांच कैसे की जा सकती है? हां, सवाल तो बिलकुल सही है। पर उन वैज्ञानिकों

को यह बात कतई अटपटी नहीं लगी थी—क्योंकि वे तो पहले से ही यह मानकर चल रहे थे कि गोरे लोगों का दिमाग़ सबसे बेहतर है और अफ्रीका से आए काले लोगों का सबसे निम्न स्तर का। और यह सिद्ध करने के लिए वे केवल यह दिखाना चाहते थे कि गोरों की खोपड़ियां बड़ी होती हैं और कालों की छोटी! बस इसी एक मात्र प्रयोग के आधार पर वे अपने कथन को 'सिद्ध' मान लेना चाहते थे। तुम्हें क्या लगता है? मान लो गोरों की खोपड़ियां बड़ी ही निकलतीं तो क्या इससे यह सिद्ध हो जाता है कि गोरों का दिमाग़ कालों से बेहतर है?

तुम यह भी सोच रहे होगे कि आख़िर यह विचार या मान्यता उन वैज्ञानिकों के मन में आई ही कैसे? वास्तव में उस समय लगभग सभी गोरों के मन में यह बात थी। तब अमरीका के समाज का ढांचा ही कुछ ऐसा था। और दुख की बात तो यह है कि आज भी जगह-जगह इसी तरह का भेदभाव जारी है—रंग, जात, लिंग आदि को लेकर! आख़िर वैज्ञानिक भी तो साधारण इंसान हैं। जो धारणाएं समाज में होती हैं वही वैज्ञानिकों के मन में भी हो सकती हैं। उस समय पीढ़ियों से काले लोग गोरों के गुलाम होते थे। उनको अफ्रीका से ख़रीदकर इसीलिए लाया गया था। शिक्षा और जीवन की बुनियादी ज़रूरतें तो दूर इंसान की इज़्ज़त तक उन्हें प्राप्त न थी। वे एक साधारण नागरिक के हक़ मांगते तो बुरी तरह दुत्कारे जाते, यातना दी जाती। दूसरी ओर गोरों के मज़े थे। लंबा-चौड़ा सुख-सुविधाओं से भरा देश था, जिस पर उन्होंने अपना कब्ज़ा जमा रखा था। जब संपन्न होने के ऐसे अनगिनत अवसर उन्हें मिले तो वे समझ बैठे कि उनकी सफलता कहीं उनकी गोरी चमड़ी के कारण ही है। और इसीलिए शायद उनके दिमाग़ ही कुछ निराले हैं। इसी बात को 'सिद्ध' करने के लिए वे अलग-अलग जुगाड़ करने लगे।

पहले-पहल खोपड़ियों में सरसों के बीज भरे गए और फिर नपनाघट से बीजों का आयतन निकाला गया। पर इससे नापों में बहुत गड़बड़ी हुई। जहां बीजों को अधिक दबाकर भरा गया वहां बीजों की मात्रा अधिक आई। इसलिए फिर लोहे की छोटी-छोटी गोलियों का उपयोग किया गया। ख़ूब तामझाम से नपाई हुई—कई खोपड़ियों की। जो नाप आए उनसे तालिकाएं बनाई गईं।

नापों का औसत निकाला गया। और इसी में की गई गड़बड़! भला, औसत निकालने में भी गड़बड़? औसत तो हम छुटपन में ही निकालना जान गए थे, तो उन बड़े-बड़े वैज्ञानिकों को क्या मुसीबत थी!

दरअसल औसत निकालने में कई बार अनजाने में गलती हो भी जाती है और कई बार जानबूझकर हेराफेरी भी की जाती है। बात को थोड़ा और साफ़ करना चाहें तो एक उदाहरण लेते हैं। मान लो कोई यह दिखाना चाहे कि भारत में रहने वाले सांवले लोग, गोरे लोगों से अधिक लंबे होते हैं! अब भारत के तमाम लोगों को पकड़-पकड़कर नापा तो जाएगा नहीं! फिर क्या किया जाएगा? होगा यह कि नमूने (या सैंपल) के तौर पर एक उचित संख्या तय की जाएगी। सैंपल संख्या तय करने के भी नियम होते हैं। चलो हम मान लेते हैं कि यह संख्या दस हज़ार है। अब देश के सभी हिस्सों से दस हज़ार सांवले और दस हज़ार गोरे लोगों को चुनना होगा। अब असली बात यह है कि यह दस हज़ार का सैंपल कैसे चुना जाए! यदि हम सांवले लोगों में तो केवल पुरुष ही पुरुष चुनते हैं और गोरे लोगों में केवल महिलाएं—तो आसानी से यह नतीजा निकाला जा सकता है कि सांवले लोगों की औसत लंबाई गोरों से अधिक है। क्योंकि आमतौर पर देश के किसी भी क्षेत्र में पुरुषों की लंबाई महिलाओं से अधिक होती है! तो बस, कर दी न चालाकी! नपाई का इतना तामझाम किया, हज़ारों को नापा, मानों कोई बहुत लंबा-चौड़ा प्रयोग कर रहे हों, पर सैंपल चुनने में ही हेराफेरी कर दी। यह हेराफेरी अन्य तरीके से भी की जा सकती है। यदि सांवले सैंपल में हम उन्हीं लोगों को अधिक चुनते जो वैसे ही कुछ अधिक लंबे हैं और गोरे सैंपल में अधिकतर पूर्वी भारत के छोटे पहाड़ी लोगों को चुनते तब भी हम अपना मनचाहा नतीजा ला सकते थे। इसलिए ऐसे मामलों में उचित सैंपल चुनना और सही औसत निकालना ही सबसे टेढ़ा मसला हो सकता है। और चालाकी करने या गड़बड़ होने की संभावना यहीं होती है।

खोपड़ियों के किस्से पर लौट चलें। कुछ ही साल हुए जब उन अमरीकी वैज्ञानिकों के प्रयोग की अच्छी तरह जांच-पड़ताल की गई तो पाया गया कि उन्होंने खोपड़ियों के सैंपल चुनने और औसत निकालने में हेराफेरी की गई थी, क्योंकि वे गोरी चमड़ी वाली जातियों की खोपड़ी की औसत नाप को बड़ा बताना चाहते थे।

किस्सा यहां ख़त्म नहीं होता इसका अगला खेल फ्रांस में खेला गया—पॉल ब्रोका नाम के एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक द्वारा। पॉल ब्रोका का भी विश्वास था कि सभी मानव जातियों की दिमाग़ी क्षमता में अंतर दिखाया जा सकता है। और इसी विश्वास को सिद्ध करने के लिए उन्होंने जो भी कर सकते थे किया। ऐसी अजीब-अजीब नपाईयां कर डाली थीं कि आज सुनकर भी हैरानगी होती है। पहले तो, सन् 1862 में उन्होंने अलग-अलग जातियों के लोगों की बांहें नापीं। और इससे यह निष्कर्ष निकाला कि जिस जाति की बांह का अगला हिस्सा (यानि कोहनी से हाथ के पंजे तक) उसके पिछले हिस्से से अधिक लंबा होगा वह बंदरों से अधिक मिलती-जुलती होगी। और शायद इसी से यह नतीजा भी निकालते कि जिसकी बांह आगे से अधिक लंबी होगी उसका दिमाग़ छोटा! है न अटपटी-सी बात! बांह और दिमाग़ में ज़बरदस्ती का रिश्ता! पर इन महाशय ने तो इसे एक वैज्ञानिक तथ्य के रूप में बताना चाहा। अरे वाह, वैज्ञानिक कुछ भी बेवकूफी की बात कहे तो क्या वह 'वैज्ञानिक तथ्य' हो जाता है! ख़ैर, उस समय किसी ने शायद ऐसे सवाल नहीं उठाए और ब्रोका जी अपनी नपाई में लगे रहे। शुरू में तो वे खुश हुए क्योंकि गोरी चमड़ी वालों की बांहें काली चमड़ी वालों से छोटी निकलीं। पर जल्दी ही उनकी गाड़ी अटक गई। ऑस्ट्रेलिया की एक आदिवासी जाति की बांहें गोरों से भी छोटी निकलीं। अब बेचारे क्या करें—अब तो उन्हें अपने कथनानुसार मानना ही पड़ता कि कुछ जातियां ऐसी भी हैं जो गोरों से भी बेहतर हैं। पर नहीं, ब्रोका साहब ने बांहों की नपाई ही छोड़ दी। बहाना यह बनाया कि बांह के आधार पर जातियों का क्रम नहीं बनाया जा सकता, क्योंकि इससे यूरोप की जातियों को बीच का दर्जा प्राप्त होगा!

किस्से का 'क्लाईमेक्स' यानी अंत और भी मज़ेदार है। ब्रोका ने बांहें छोड़कर खोपड़ियां पकड़ लीं। पर अब वे सीधे दिमाग़ नापने पर उतर आए। जब कोई मर जाता तो ब्रोका और उसके साथी उसका दिमाग़ लेकर तौल लेते। और मज़े की बात तो यह कि उस समय के सभी जाने-माने लोगों में होड़-सी लग गई कि किसका दिमाग़ अधिक वज़नदार निकलेगा। लोगों ने अपने दिमाग़ दान कर दिए! अरे नहीं भई मरने से पहले नहीं, मरने के बाद! जैसे नेत्रदान होता है। सन् 1883 में सबसे भारी दिमाग़ 2 किलो का पाया गया। मरने के बाद जिस प्रोफ़ेसर का दिमाग़ डेढ़ किलो से कम निकलता उसे 'मंद-बुद्धि' की उपाधि दी जाती, चाहे जीते-जी उसने कितना ही बढ़िया काम क्यों न किया हो। दिक्क़त तो तब आई जब गौस नाम के एक महान गणितज्ञ का दिमाग़ केवल 1492 ग्राम का निकला। अब क्या किया जाए? उनको बुद्धु कहने की हिम्मत तो थी नहीं! पर कोई न कोई 'कारण' तो ढूंढना था ही। आख़िर में यह कहा गया कि भले ही गौस का दिमाग़ वज़न में कम था पर वह सामान्य दिमाग़ से अधिक झुर्रीदार तो था। अब लोग दिमाग़ के पीछे हाथ धोकर पड़ गए—लगे दिमाग़ की भी 'खाल' उखाड़ने। असली मज़े की बात तो यह थी कि ब्रोका को स्वयं अपने दिमाग़ पर बहुत नाज़ था पर उसे यह मालूम नहीं था कि उसके दिमाग़ का वज़न केवल 1424 ग्राम था (जो उसके मरने पर तौला गया)। यदि उसे मालूम होता तो वह शायद दिमाग़ तौलने के चक्कर में ही न पड़ता! क्या ख़्याल है?

दरअसल दिमाग़ के वज़न का संबंध तो व्यक्ति के शरीर के वज़न से संबंधित है। बड़े और भारी शरीर वालों के दिमाग़ भी अक्सर बड़े और भारी होते हैं। परंतु यदि कोई काफ़ी समय बीमार रहे या बहुत ही बूढ़ा हो जाए तो उसका दिमाग़ पहले से कुछ छोटा हो जाता है। आश्चर्य की बात तो यह है कि इन सब बातों को ब्रोका भी जानता था। परंतु इनका इस्तेमाल

चित्र : जया

तरीके और भी हैं!

खोपड़ियों की नपाई के इस किस्से के साथ-साथ बुद्धि की जांच के कई और तरीके भी अपनाए गए हैं। इनमें से एक तरीका 'इंटलिजेंस टेस्ट' (आई.क्यू. टेस्ट) है। यह टेस्ट आमतौर पर लिखित रूप में होते हैं और कुछ ख़ास तरह की क्षमताओं की ही जांच कर पाते हैं। होता यह है कि जो व्यक्ति उन सवालों या चित्रों से परिचित नहीं होता वह 'मंदबुद्धि' घोषित हो जाता है। जैसे अक्सर आदिवासियों को यह टेस्ट देकर 'मंदबुद्धि' सिद्ध कर दिया जाता रहा है।

पिछले कुछ समय में विश्व के कई शिक्षाविदों तथा वैज्ञानिकों ने आपत्ति उठाई है कि ऐसे 'इंटेलिजेंस' टेस्टों द्वारा बहुत ही सीमित जांच हो पाती है। आख़िर 'इंटेलिजेंस' या बुद्धि की क्षमता के कितने ही पहलू हैं। जैसे नाच-गाने, बजाने की कला में कुशलता या हाथों से कुछ बनाने का कौशल आदि की जांच इन टेस्टों में शामिल नहीं है। वास्तव में इन टेस्टों द्वारा इन्हें मान्यता ही नहीं दी जाती।

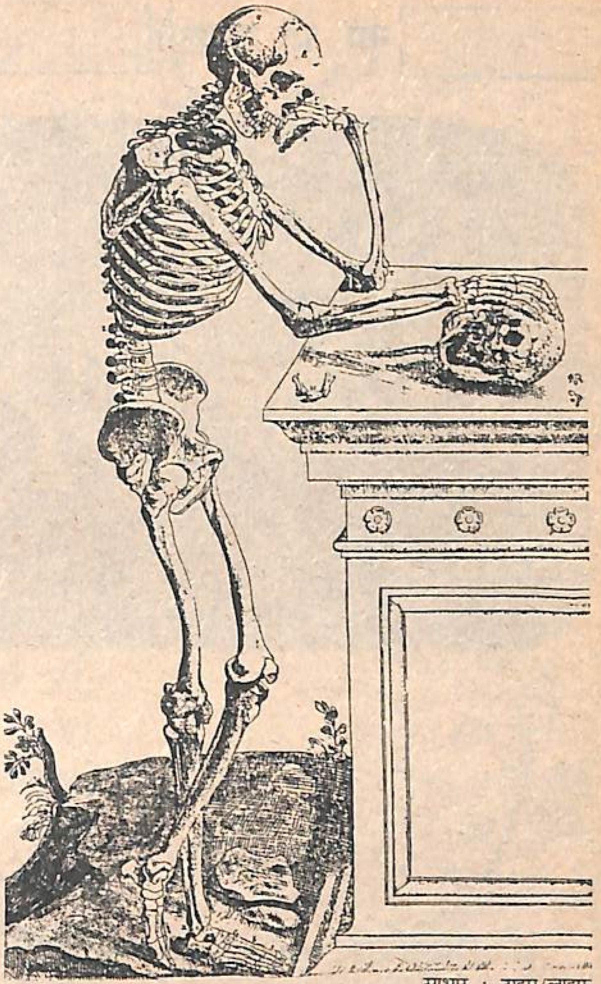
साभार : टाइम/लाइफ

उसने केवल वहीं किया जहां उसको अपना मतलब सीधा करना था। जैसे एक वैज्ञानिक ने पाया कि जर्मन लोगों का दिमाग़ फ्रांस के लोगों से औसतन 100 ग्राम भारी है, तो ब्रोका को यह बात बिलकुल पसंद नहीं आई। वह स्वयं फ्रांसीसी था। इसलिए उसने फिर से सभी नापों में लोगों की उम्र, स्वास्थ्य आदि का कुछ पेचीदा हिसाब-किताब बनाया और किसी न किसी तरह दिखा दिया कि जर्मन लोगों का दिमाग़ फ्रांसीसियों से छोटा ही है। है न ज़बरदस्ती? यानी चित्त भी मेरी, और पट भी।

ऐसा नहीं था कि ब्रोका और उस समय के अन्य वैज्ञानिक महज़ मन बहलाने का एक खेल खेल रहे थे। इनकी हर जीत समाज के किसी तबके पर भारी पड़ती थी। चूंकि ये लोग प्रसिद्ध थे। समाज में उनकी एक पोजीशन थी, मान था और इस सबसे बढ़कर वे 'वैज्ञानिक' भी थे। इसलिए जो भी ये कहते उसका समाज पर बहुत गंभीर असर पड़ता था। जैसे ही अमरीका के काले लोगों को उन्होंने मंदबुद्धि 'साबित' किया, वैसे ही उन लोगों का वोट देने का हक़ छिनने लगा। महिलाओं को भी इन वैज्ञानिकों ने हमेशा नीचा दिखाना चाहा। महिलाओं का दिमाग़ जब पुरुषों से हल्का पाया गया तो वहां इस बात का ध्यान नहीं रखा गया कि महिलाओं का शरीर भी तुलना में हल्का होता है। और यह सब ध्यान रखने की ज़रूरत भी क्या थी। उन्हें तो 'सिद्ध' करना ही था कि महिलाएं 'मंदबुद्धि' हैं। नतीजा तो पहले से ही तय था। उनके आंकड़े क्या वास्तव में उस नतीजे को दर्शाते हैं, वे इस बात पर ग़ौर करना ही नहीं चाहते थे। बस नन्नू की तरह छोटी खोपड़ी देखते ही झट कूदने लग जाते और उस खोपड़ी में बसे दिमाग़ को कोसने लगते।

यह सब तो पुराना किस्सा है। पर इससे मिलते-जुलते किस्से आज भी घटते-बनते रहते हैं। नपाई के तरीके ज़रूर बदल गए हैं, पर उनसे निकाले गए नतीजों के तरीके शायद वही हैं। और कारण भी वही। वही इंसानों में भेदभाव। ग़रीबी और बेबसी पर वहीं शक की नज़र। वही शोषण। वही ऊंच-नीच और ऊंचे दर्जे को बनाए रखने की वही कोशिशें।

☐ अनीता रामपाल

रंग बिरंगी तितलियां तुमने खूब पकड़ी होंगी और अपनी कापी में दबाकर भी रखी होंगी। पर तुम्हें सबसे ज़्यादा मज़ा किस चीज़ में आता है! हमें लगता है तितलियों के चित्र बनाने में तो ज़रूर मज़ा आएगा!

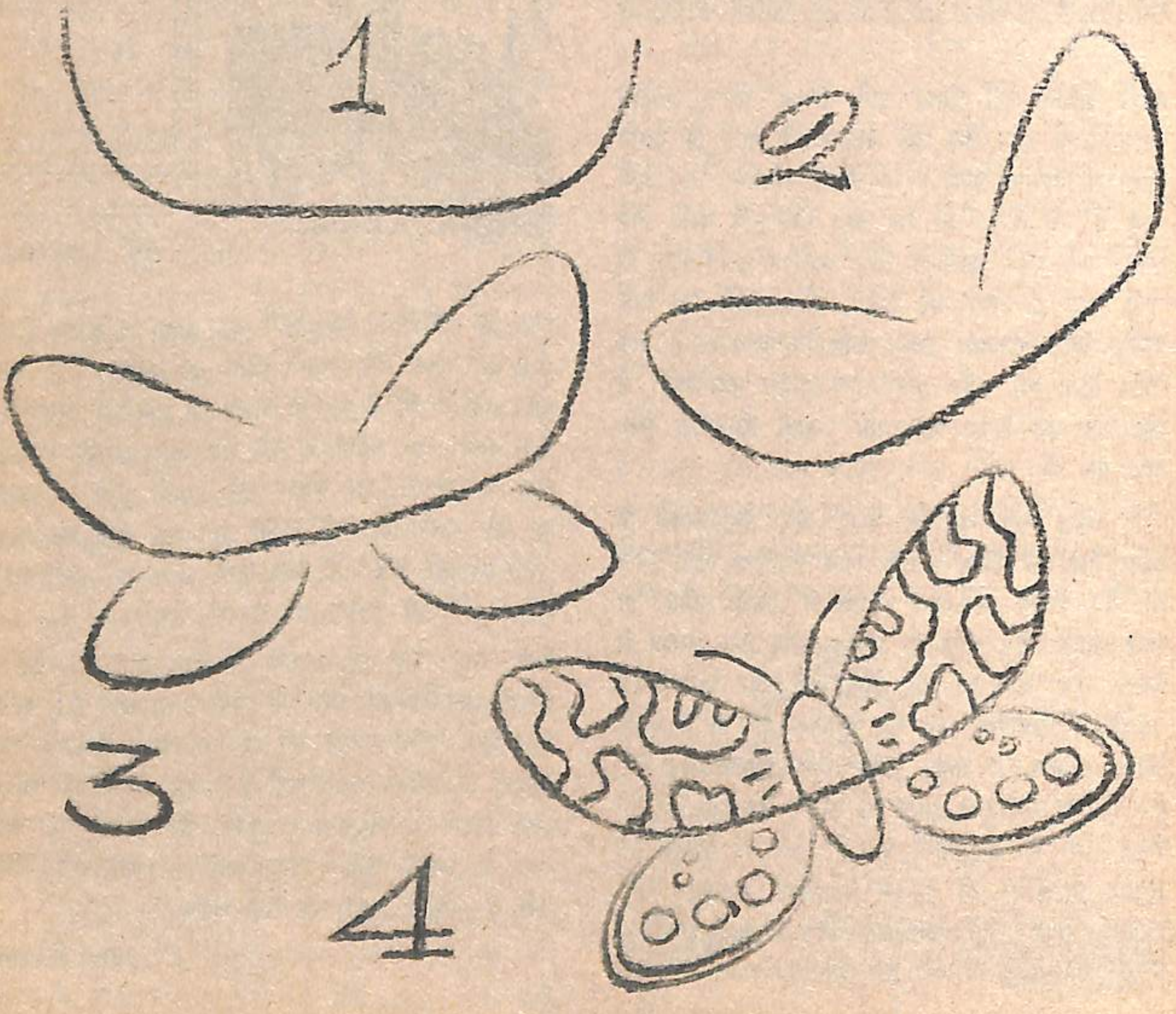

रात सपने में

उड़ी मछलियां अंबर में,
सांप चर रहे घास।
बिल्लियों को नटखट चूहे
बना रहे थे ग्रास।
रात सपने में!

बरगद पर डाले रस्से को,
गधे झूल रहे थे झूला!
बैठ के उकडूं ऊंठ महाशय,
फूंक रहे थे चूल्हा!
रात सपने में!

मेंढक खा गए पल भर में,
चॉकलेट का जंगल।
कोयल ने गिद्धों को पछाड़ा,
हुआ अनोखा दंगल।
रात सपने में!

थर-थर कांप रहे वनराज,
हिरण ने झापड़ मारा!
ब्रेक डांस में मग्न था हाथी,
देखा अजब नज़ारा।
रात सपने में!

☐ अशोक अंजुम

चित्र : आशा शर्मा

चांद सूरज को चुराता है!

दोपहर का समय था। धूप से ज़मीन गरम हो गई थी। और गरम ज़मीन की जलन से चुहिया अपने घर में बेचैन थी। खाना बनाकर वह कब से चूहे मामा की राह देख रही थी। रात से गए हुए चूहेमामा अभी तक नहीं लौटे थे। चूहामामी ने रात को व्रत रखा था इसलिए वह भूख से बेचैन थी। वह घर के दरवाज़े पर आकर इंतज़ार करने लगी।

दूर से चूहे मामा अपनी पूंछ हिलाते हुए आते दिखाई दिए। उनको आते देखकर मामी आग बबूला हो गई और आते ही ज़ोर से बोली, "कितनी देर कर दी। खाना ठंडा हो गया। दिन में देर से खाया हुआ भोजन मैं हजम नहीं कर सकती, ये तो आपको मालूम है। फिर भी गए गप्प लड़ाने। एक से बढ़कर एक निठल्ले साथी इकट्ठे किए हैं। चलो अब खाना खा लो। खाने के बाद गेहूं साफ़ करने में मेरी मदद करना।"

"उधर गांव में कितनी गड़बड़ी फैली है, कैसी बहस चल रही है और तुम्हें खाना खाने की सूझ रही है।" पसीना पोंछते हुए मामाजी बोले।

"अब कैसी बहस! अभी-अभी तो चुनाव हुआ और मंत्रीजी हार गए।"

"अरी, वह ख़बर तो अब पुरानी हो गई, उससे भी बढ़कर एक ख़बर है।"

"कौन-सी?"

"सूरज की चोरी।"

"क्या कहा?"

"हां, सोलह फरवरी को सूरज की चोरी होगी।"

"क्या बात कर रहे हो। चोर क्या दिन, समय बताकर चोरी करने आते हैं? तुम खेत में से अनाज या गोदाम में से गेहूं चुराकर लाते हो तो क्या मालिक को बताकर जाते हो?"

"अरे चुप भी कर! हम अनाज लाते हैं वह चोरी नहीं है। क्योंकि पेट के लिए अनाज लाना हमारा हक़ है।"

"हां, यह बात तो ठीक है।"

"तुम्हें मालूम नहीं? डाकू जब लूटमार करता है, डाका डालता है तो वह दिन और समय बताकर आता है।"

"हां, यह बात भी ठीक है। मुझे याद है जब हम साहूकार के घर में रहते थे तो झीलसिंह ने समय और दिन लिखकर एक पत्थर से बांधकर फेंका था और उसी दिन आकर पत्थर मार-मारकर सब लूटमार कर दी थी। कुछ भी नहीं बचा था।"

"इसीलिए तो हमने वह घर छोड़ा था और अब पेट के लिए मारे-मारे फिर रहे हैं।" मामाजी बोले।

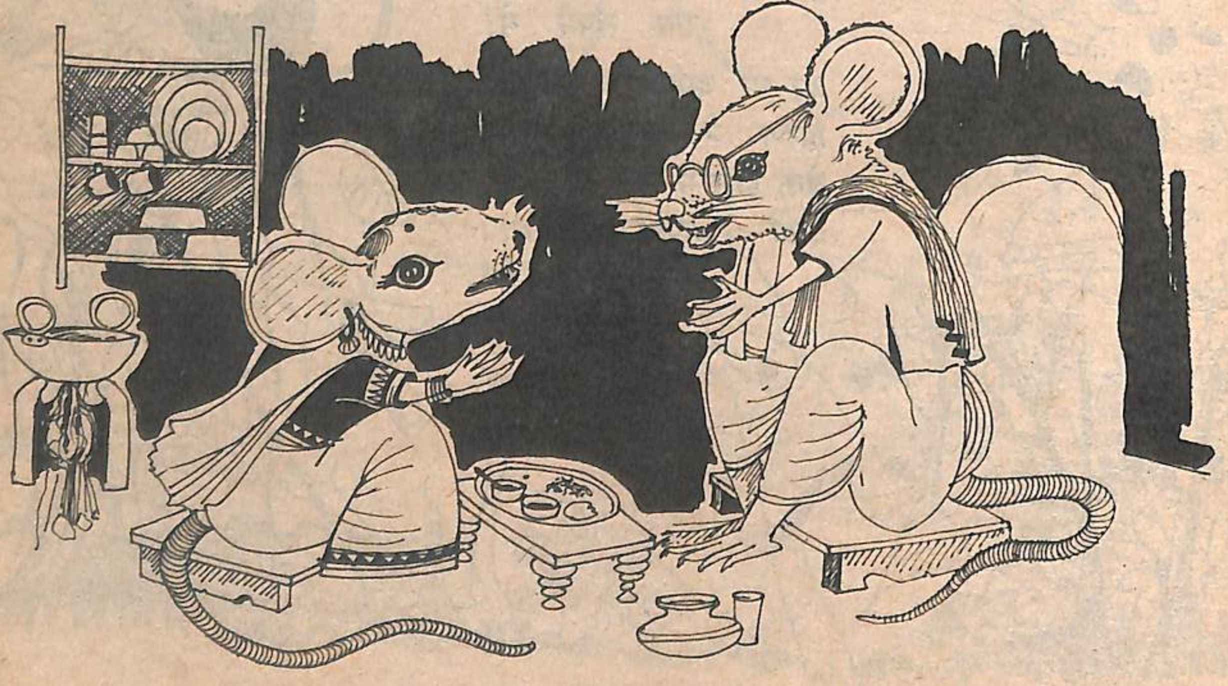

''लेकिन अब तो सूरज की चोरी होने वाली है, सूरज की चोरी हो गई तो चारों ओर अंधेरा फैल जाएगा।''

''लेकिन सूरज को चुराएगा कौन?'' मामी बोली!

''चांद।''

''चांद!'' कहकर मामी हंसने लगी।

''हंसती क्यों है?''

''हंसी नहीं आएगी तो क्या? इतना बड़ा सूरज और छोटा-सा चांद। वह सूरज को चुराएगा।''

मामा जी ने कहा, ''सिर्फ़ चुराएगा नहीं, अपने पेट में छिपाकर रखेगा।''

मामी ने कहा, ''ठीक है पर यह बात बाहर न कहना नहीं तो लोग तुम्हें पागल कहेंगे। हमारा छोटा भी जानता है कि सूरज कितना बड़ा है और चांद कितना छोटा है। और फिर सूरज इतना गरम है कि उसकी गरमी चांद सहन कर पाएगा, बेचारा पिघल जाएगा।''

अब मामा जी आपे से बाहर हो गए। बोले, ''खुद को तो अक्ल नहीं है। इतने लोग बोलते हैं। अख़बार में छपकर आता है वह सब ग़लत है? देखो मैं अख़बार का एक टुकड़ा लाया हूं। पढ़ो इसे!''

मामी जी बोलीं, ''आप ही पढ़कर सुनाइए।''

''सुनो, सोलह तारीख को पूर्ण रूप से सूर्यग्रहण होगा और चांद, सूरज को निगलेगा। यह देखने के लिए लोग भी एक जगह इकट्ठे होने वाले हैं।''

कहीं आने-जाने की बात सुनकर, कोने में बैठे छोटे चूहे-चुहिया भी साथ जाने की ज़िद करने लगे। मामी भी हट करने लगी। तब चूहे मामा सोचने लगे, ''जाएंगे लेकिन कैसे?''

तब छोटे ने एक तरकीब सुझाई। वह कहने लगा, ''बाबा सोमण का देवेन जाने वाला है। वह अपने दोस्तों से कह रहा था, मैंने यहीं से सुना है। उसी के साथ जाएंगे।''

इतने में छोटी चुहिया बोली, ''ना रे बाबा, वह देखेगा तो लकड़ी से मार देगा। देखो ना पहले ही मेरी पूंछ लकड़ी मारकर उसने तोड़ी है।''

अब छोटा कहने लगा, ''तेरी पूंछ कटेगी नहीं

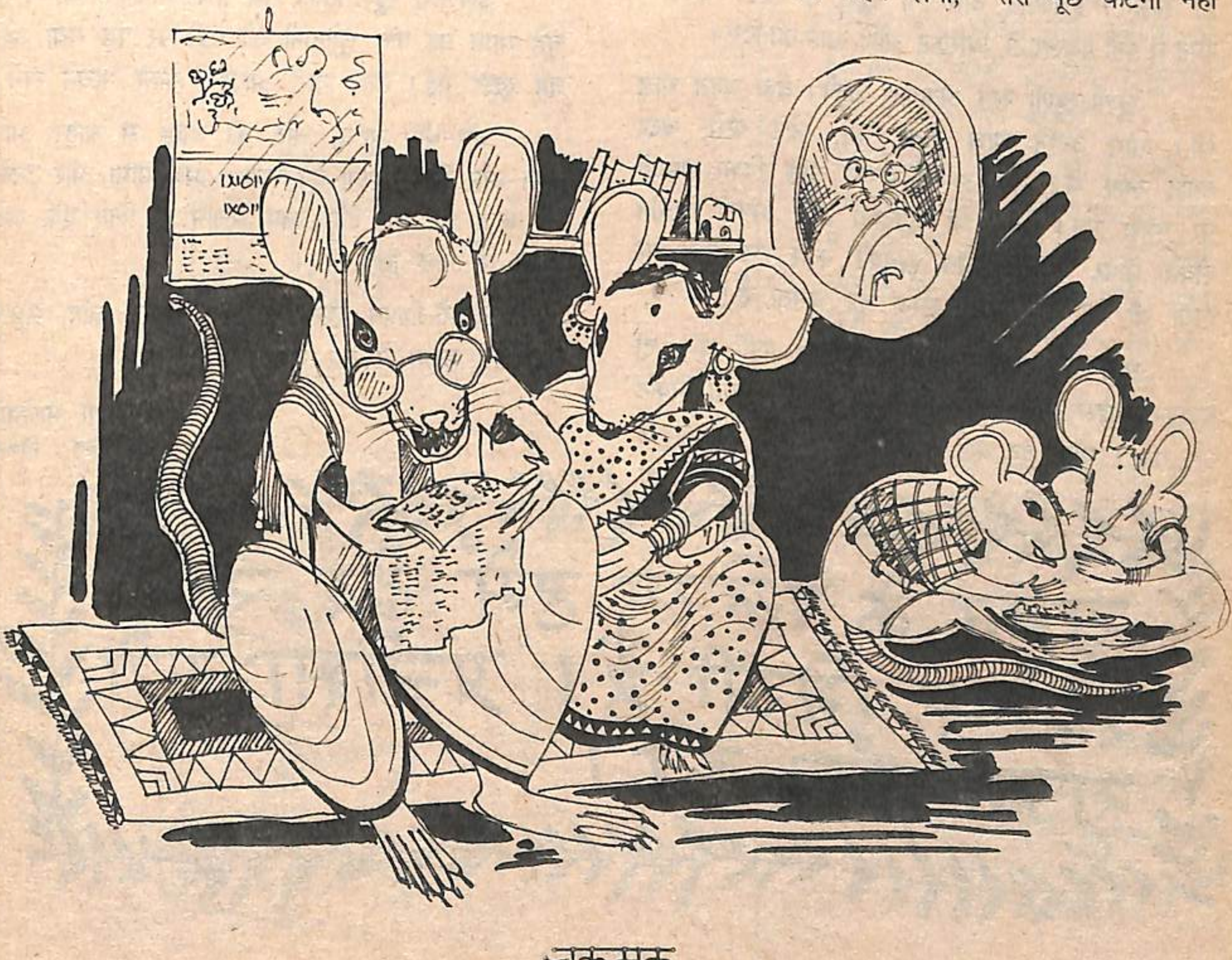

तो क्या? तू तो बहादुरी दिखाने उसके पांव पर चढ़ी थी। वह मारेगा नहीं तो क्या?''

आख़िर में देवेन के साथ जाने का सबका तय हुआ। रात को सब चुपचाप देवेन के घर गए। उसका सामान बंधा पड़ा था, लेकिन उसमें तो जगह नहींथी। इधर उधर दौड़ते-दौड़ते एक चूहेदानी छोटे ने देखी। उसमें देवेन की दादी ने एक पकौड़ा रखा हुआ था। उसकी खुशबू से छोटा अपने को रोक न सका और अंदर जाकर खाने लगा। उसे देखकर छोटी भी अंदर गई और खाने लगी। उनको छुड़ाने मामा और मामी भी गए और वे भी चूहेदानी में फंस गए।

दूसरे दिन चूहेदानी में चूहों को देखकर दादी ने रामा को बुलाकर इन सबको मारने के लिए कहा। अब सब डरके मारे कांप उठे। लेकिन देवेन बोला, ''मैं इन्हें अंकोले ले जाता हूं। देखूंगा सूर्यग्रहण का इन पर क्या प्रभाव पड़ता है!''

यह सुनकर मामा-मामी और छोटा-छोटी खुश हो गए। चलो, जान तो बची, और यात्रा में भी शामिल हो सकेंगे। इसीलिए और भी खुश हो गए। देवेन ने रास्ते में उन्हें डबलरोटी, बिस्किट आदि खाने को दिए।

खुशी-खुशी सब अंकाला पहुंचे। वहां बहुत भीड़ थी। लोग अपने साथ तोता, पेड़, छोटे पौधे, बंदर आदि लाए थे। सब अपनी-अपनी चीज़ें लेकर पहाड़ी पर पहुंच गए। देवेन भी चूहेदानी और अपनी दूरबीन लेकर ऊपर पहुंचा! अब सबकी नज़र आसमान पर लगी थी कि कब चांद, सूरज को चुराता है।

घड़ी की सुईयां आगे-आगे जा रहीं थीं—दो बजकर बाइस मिनट पर चांद-सूरज के बिलकुल निकट आ गया। थोड़ी देर बाद और निकट आया और सूरज का थोड़ा सा हिस्सा चांद के पेट के अंदर दिखाई देने लगा। छोटा ज़ोर से चिल्लाया, ''देखो बाबा, चांद सूरज को खाने लगा है।''

मामी ने कहा, ''नहीं, नहीं वह अब थोड़ा-थोड़ा करके चांद की जेब में जाने लगा है। देखो और थोड़ा, और थोड़ा।''

इस तरह पूरा सूरज चांद की जेब में चला गया। अंधियारा हो गया। सब सुनसान था। हवा मानो बंद थी। पेड़ के पत्तों ने हिलना बंद कर दिया था। पंछी चुप हो गए थे। बंदर सो गए थे। लेकिन मामा-मामी और उनके बच्चे आनंद से नाच रहे थे। आसमान में शुक्र, बुध, गुरु आदि तारे दिखाई देने लगे थे।

चूहे मामा धीरे से बोले, ''सूरज तो दिखाई नहीं देता।''

मामी बोली, ''चांद ने उसे चुराया है। अब पृथ्वी पर अंधेरा छाएगा। अब किसी को कुछ दिखाई न देगा। अब हमें कोई नहीं देख सकेगा। हमारा लुकना-छिपना बंद। अब हमारा ही राज होगा।''

इस तरह खुश होकर सब नाचने लगे। नाचते-नाचते चूहे मामा का पांव चूहेदानी की पट्टी पर पड़ गया और वह खुल गई। अब चारों आज़ाद होकर नाचने लगे।

धीरे-धीरे सूरज, चांद की आड़ से बाहर आने लगा और फिर रोशनी देने लगा। अब मामा और उनके घर वाले डर गए और जान बचाने के लिए एक बड़े पत्थर के पीछे छिप गए।

छिपते-छिपते छोटा बोला, ''बाबा, चांद, सूरज की चोरी हजम न कर सका।''

☐ **आशा भाजेकर**

सभी चित्र : विवेक

सृजन के लिए हमें ढेर सारी रचनाएं मिली हैं। प्रतीक्षा करो सृजन अंक की।

बॉर्डर : सुरेश सिंह, पांचवीं, जालौर

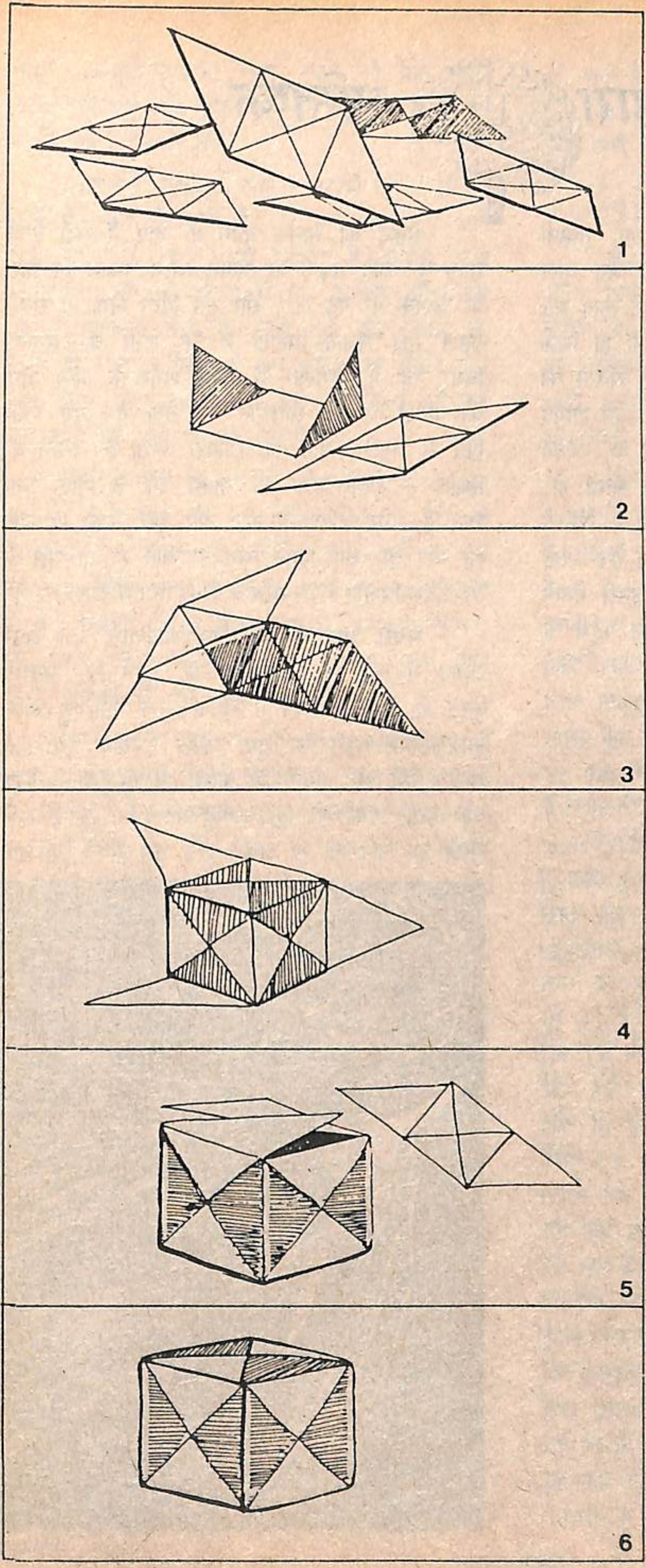

घन

पिछले अंक में तुमने काग़ज़ का समानांतर चतुर्भुज बनाया था। घन बनाने के लिए ऐसे छह समानांतर चतुर्भुज तैयार करो। समानांतर चतुर्भुज बायीं या दायीं दोनों दिशाओं के हो सकते हैं। पर हमें घन बनाने के लिए किसी एक ही दिशा वाले छह घन चाहिए होंगे (चित्र-1)।

प्रत्येक समानांतर चतुर्भुज के मध्य में एक चौकोन और सिरों पर एक-एक त्रिकोण होगा। दोनों त्रिकोणों को सपाट सतह की ओर मोड़ो जिससे बीच में चार जेबों का एक नियमित वर्ग बन जाए (चित्र-2)। इन छह चतुर्भुजों के कुल बारह त्रिकोण पट्टे होंगे और चौबीस जेबें होंगी। एक चतुर्भुज के त्रिकोण पट्टे दूसरे की जेब में घुसकर एक नियमित घन बनाएंगे।

दो समानांतर चतुर्भुजों से शुरू करो। एक का त्रिकोण पट्टा दूसरे की जेब में घुसा दो (चित्र-3)। अब तीसरे चतुर्भुज के दोनों त्रिकोण पट्टे पहले दोनों चतुर्भुजों की जेबों में घुसा दो। इस तरह घन का एक कोना बन जाएगा (चित्र-4)। इसी तरह बाक़ी भी जोड़ो। यह ध्यान रखना कि सभी त्रिकोण पट्टे चौकोनें की जेबों में घुसेंगे (चित्र-5)। कोई भी त्रिकोण पट्टा घन के अंदर नहीं रहेगा।

घन बनाने के लिए गोंद की कोई ज़रूरत नहीं होगी। रंगीन घोंटा काग़ज़ से रंग-बिरंगा घन बना सकते हो और मोटे काग़ज़ से मज़बूत।

☐ अरविंद गुप्ता

मैं हूं तुम्हारा मस्तिष्क

मैं हूं तुम्हारा मस्तिष्क। यूं चौंक क्यों गए, तुम्हारी खोपड़ी में से ही बोल रहा हूं। वैसे तो मेरा कुल वज़न डेढ़ किलोग्राम है यानि तुम्हारे शरीर के कुल भार का लगभग तीसवां हिस्सा। पर तुम जो भी हो सिर्फ़ मेरी वजह से हो। तुम्हारी चालढाल, तुम्हारा सोचने का ढंग, तुम्हारा पूरा व्यक्तित्त्व मेरे ही कारण है। तुम शायद सोचते हो... अरे अब सोचते भी मुझसे ही हो, आंखों से देखते हो, कानों से सुनते हो, नाक से सूंघते हो! पर यह तो तुम्हारा भ्रम है। सच तो यह है कि ये सारी संवेदनाएं मेरे कारण ही संभव हो पाती हैं। आंखें देखने में सहायक ज़रूर होती हैं लेकिन इनसे देखने पर जो चित्र बनता है वह यदि मुझ तक न पहुंचे तो देखना संभव ही नहीं होगा। इसी प्रकार कान ध्वनि की तरंगों को और नाक गंध को केवल एकत्रित करते हैं। पढ़ते-पढ़ते कहीं तुम्हें भूख या प्यास तो नहीं लगने लगी? इस सवाल का जवाब भी दूंगा तो मैं ही! तुम बीमार हो या अच्छे? स्कूल जाना है या बाज़ार? सोना है या जागना? ऐसे तमाम प्रश्नों के उत्तर मैं ही तुम्हें देता हूं!

जब तुम सोते हो, तब भी मैं सजग रहता हूं और मुझमें संदेशों का आदान-प्रदान ठीक उसी प्रकार चलता रहता है जैसे कि कोई व्यस्त टेलीफोन एक्सचेंज। तुम सोच रहे होगे कि मैं इतने सारे काम एक साथ कैसे निपटा लेता हूं? पहली बात तो यह है कि मेरे भिन्न-भिन्न भाग, भिन्न-भिन्न काम करते रहते हैं। कोई भाग सुनने से संबंधित है तो कोई देखने से। कोई सांस लेने की क्रिया को नियंत्रित करता है तो कोई शरीर के विभिन्न अंगों में तालमेल रखता है। दूसरी बात यह है कि जब भी मुझमें बाहर से कई संदेश एक साथ आते हैं तो मैं केवल उन्हीं संदेशों की ओर ध्यान देता हूं जिन्हें मैं महत्त्वपूर्ण समझता हूं। मान लो कि तुम रेडियो से गाना सुन रहे हो और साथ ही किताब भी पढ़ रहे हो, तो मैं ही यह तय करता हूं कि अधिक ध्यान किस ओर दिया जाए - किताब की ओर या गाने की ओर? यदि मुझे किताब अच्छी लगी तो हो सकता है मैं गाने की ओर ध्यान ही न दूं। ऐसे में यदि कोई तुमसे पूछे कि रेडियो से कौन-सा गाना आ रहा था तो तुम शायद बता भी न पाओ।

संकट का सामना करने के लिए मैं सदा तैयार रहता हूं। यदि सड़क पर चलते समय तुम्हारा पैर केले के छिलके पर पड़ जाए और तुम गिरने लगो तो सबसे पहले मुझे सूचना मिलती है कि शरीर का संतुलन बिगड़ रहा है, संभलो! मैं फ़ौरन शरीर के अन्य अंगों को संदेश भेजकर सावधान कर देता हूं। पूरा शरीर फिर से संतुलित होने की कोशिश करता है। गिरने की स्थिति में तुम्हारे हाथ भी सहारा देने के लिए तैयार रहते हैं—मेरा संदेश पाकर! और इस सबके बावजूद भी यदि तुम चारों खाने चित्त हो जाते हो तो मुझे ही यह संदेश मिलता है कि शरीर के किस भाग में चोट लगी है।

सबसे आश्चर्यजनक काम 'याददाश्त' है। अपने जीवन में तुम जो भी देखते हो, सुनते हो, अनुभव करते हो, उसे मैं अपने में सुरक्षित रख लेता हूं, ताकि आवश्यकता पड़ने पर तुम उसका उपयोग तुरंत कर सको। मेरी इस क्षमता के कारण ही तुम अपने मित्रों को पहचान सकते हो, किताब पढ़ सकते हो, महीनों पहले सीखे हुए गाने को गा सकते हो। ज़रा सोचो कि यदि

साभार : टाइम/लाइफ

मुझमें जानकारी एकत्रित करके रखने की यह क्षमता यानि याददाश्त नहीं होती तो तुम कौन-से काम कर सकते और कौन-से नहीं?

अब जो महत्त्वपूर्ण होता है उसकी ख़ातिरदारी भी होती है—मेरी भी होती है। पूरे शरीर में बहने वाले रक्त का 1/5 भाग मुझमें पहुंचता है क्योंकि अन्य किसी भी अंग की तुलना में मुझे अधिक ऑक्सीज़न की आवश्यकता होती है। यदि मुझे कुछ सेंकड के लिए भी रक्त न मिले तो तुम बेहोश हो सकते हो। और अगर थोड़ी और देर हो जाए तो लकवा भी मार सकता है या मृत्यु भी हो सकती है।

मेरे रंग-रूप के बारे में भी जानना चाहते होगे न! तो सुनो मेरा रंग भूरा और सफ़ेद है और मैं अर्धठोस हूं। कोमल होने के कारण प्रकृति ने मेरी सुरक्षा के लिए भारी-भरकम व्यवस्था की है। हड्डियों से बनी मज़बूत खोपड़ी मेरा कवच है। इसके अतिरिक्त, मेरे चारों ओर पानी के समान एक द्रव पदार्थ होता है जो झटकों से मेरी सुरक्षा करता है।

बनावट के बारे में भी थोड़ा बताता हूं। मैं लगभग तीन अरब विशेष प्रकार की सूक्ष्म कोशिकाओं से बना हूं। ये कोशिकाएं तंतुओं के द्वारा एक दूसरे से जुड़ी होती हैं। इन तंतुओं के द्वारा एक कोशिका से दूसरी कोशिका तक संदेश पहुंचाया जाता है। मेरे सभी भाग इन्हीं कोशिकाओं से बने होते हैं। संदेश पहुंचाने की क्षमता के अतिरिक्त इन कोशिकाओं की दूसरी विशेषता यह है कि इनकी संख्या में वृद्धि नहीं होती। आमतौर पर जब तुम्हारे शरीर के किसी भाग में चोट लगती है तब उस स्थान की त्वचा और पेशियां कट जाती हैं, घाव हो जाता है। धीरे-धीरे त्वचा और पेशियों की कोशिकाओं की संख्या में वृद्धि होने लगती है और वे घाव को भर देती हैं। किंतु यदि मुझे चोट लग जाए और मेरी कोशिकाएं नष्ट हो जाएं तो उनके स्थान पर नई कोशिकाएं नहीं बनतीं। फिर भी मेरी रचना कुछ इस प्रकार की होती है कि यदि किसी छोटी-मोटी चोट से थोड़ी बहुत कोशिकाएं नष्ट हो भी जाएं तो चोट लगे हुए भाग का काम अन्य भाग संभाल लेते हैं।

आयु बढ़ने के साथ शरीर की विभिन्न क्रियाओं पर असर पड़ता है। तुमने देखा होगा कि बूढ़े लोगों में सुनने की, स्वाद की, गंध आदि की क्षमताएं कम हो जाती हैं और उनकी याददाश्त भी कमज़ोर हो जाती है। यह सब मस्तिष्क की कोशिकाओं के नष्ट होने और उनके स्थान पर नई कोशिकाएं नहीं बनने के कारण होता है। फिर भी, अंत तक इतनी कोशिकाएं तो बच ही जाती हैं कि शरीर का काम पूरी तरह ठप्प न हो जाए।

मुझे भी खतरों का सामना करना पड़ता है। मेरे भीतर गठान बन सकती है जिसके कारण मनुष्य को बेहोशी के दौर पड़ते हैं। हालांकि आजकल ऐसी गठान को ऑपरेशन करके निकाला जा सकता है। पर यह बहुत मंहगा पड़ता है और देश के कुछ गिने-चुने अस्पतालों में ही इसकी सुविधा है।

मेरे भीतर रक्त पहुंचाने वाली अनगिनत रक्त वाहिनियों में से किसी में कभी-कभी रक्त का थक्का बन जाता है या कोई छोटी धमनी कमज़ोर होकर फट जाती है। इससे उस भाग में पहुंचने वाले रक्त में कमी आ जाती है। यह एक खतरनाक़ स्थिति होती है, जिसमें लकवा या मृत्यु भी हो सकती है।

मज़बूत खोपड़ी होने के बावजूद भी कभी-कभी इतनी ज़ोर से चोट लगती है कि मुझे क्षति पहुंच सकती है। जिस प्रकार उंगली में चोट लगने पर उसमें सूजन आ जाती है, ठीक उसी प्रकार मुझमें भी सूजन आ जाती है। चारों और कड़ा आवरण होने के कारण मुझे सूज़न आ जाने पर फैलने की जगह ही नहीं मिलती और मुझ पर दबाव पड़ने लगता है। ऐसी स्थिति में बेहोशी या मृत्यु हो सकती है।

नशीले पदार्थों का असर भी मुझ पर पड़ता है—और बहुत बुरा असर पड़ता है। शराब, तंबाखू का धुंआ, गांजा, भांग आदि पदार्थों से मेरी कोशिकाएं नष्ट हो जाती हैं और जो बचती हैं वे भी अपना काम ठीक से नहीं कर पातीं।

तो तुमने देखा कि मैं तुम्हारे शरीर का कितना महत्त्वपूर्ण अंग हूं। पर फिर भी मुझे किसी देखभाल की ज़रूरत नहीं होती। हां, तुम जितना पढ़ोगे-लिखोगे, सीखोगे वह सब मैं अपने भीतर सुरक्षित रख लूंगा। ताकि ज़रूरत पड़ने पर तुम इस जानकारी का उपयोग कर सको। इसी को ज्ञान कहते हैं। तो भई अब मैं यह तुम पर छोड़ता हूं कि तुम मुझसे कितना काम लेते हो! -पर यह भी कौन तय करेगा...!

(आय एम जॉज बॉडी' से रूपांतरित)

☐ अरविंद गुप्ते

ज़मीन पर चलना -1

चलते-फिरते तथ्य

दीपंकर गोस्वामी
इंडस्ट्रियल डिजाइन सेंटर बम्बई.

हम गतिशील दुनिया में रहते हैं। जहां सड़कों पर वाहन चल आसमान में चिड़िया उड़ती हैं, हवा में बादल मंडराते हैं, नदि मछलियां तैरती हैं और नदियां खुद समुद्र की ओर बहती है सब गतियों के प्रति हम इतने अभ्यस्त हो चुके हैं कि किसी अ गतिहीन दुनिया की कल्पना ही नहीं कर पाते हैं। और अगर ऐसी दुनिया हो तो, कितनी उबाऊ और बेजान-सी दुनिया वह। याद है कोई ऐसा दिन जब तुम्हारे पैर में चोट आ ग और तुम्हें बिना हिले-डुले बिस्तर पर पड़े रहने को कहा गया कितनी बोरियत भरे दिन थे!

वास्तव में गति हमारे जीवन का एक महत्त्वपूर्ण पहलू है, एक अभिन्न अंग है। आओ, इस रहस्यपूर्ण दुनिया में झांक कर उसकी सुंदरता का आनंद उठाएं। पर कहां से शुरू करें? क्यों न खुद से ही शुरू करें? यानी मानव जाति से। मानव किन-किन विधियों से चलते-फिरते हैं। चलो, इस की खोज करें!

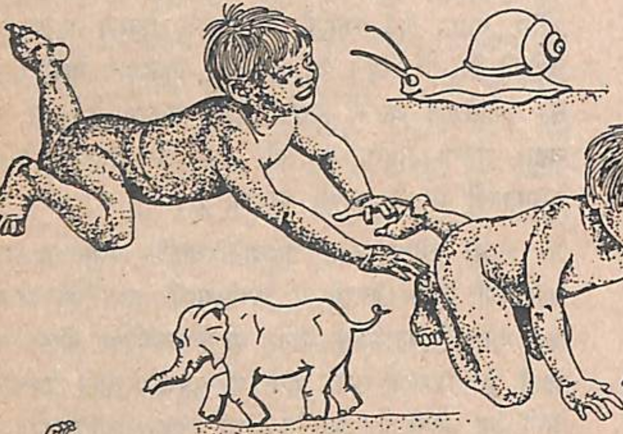

मानव शिशु अवस्था में घोंघे की तरह बिस्तर पर इधर से उधर खिसकता या रेंगता है। थोड़ा बड़ा होने पर वह घुटनों के बल चलना शुरू करता है, ठीक वैसे ही जैसे चौपाए चलते हैं। लेकिन सबसे अहम् दिन वह है जब शिशु गिरते-पड़ते अपने दो पैरों पर खड़ा होकर चलने की शुरूआत करता है।

- ***मानव चाल की कम-से-कम 14 विभिन्न विधियां होती हैं।***
जैसे चलना, दौड़ना, चलना, उतरना, उछलना, कूदना, फुदकना, फिसलना, खिसकना, पैर-बांसों से चलना, हाथ के बल चलना, आड़ी नसैनी पर हाथ के सहारे चलना, सरकना, रेंगना, गाड़ी के पहिए जैसे घूमना आदि।
- ***जब तेज़ हवा चलती है तब आगे झुककर चलना ज़रूरी क्यों होता है?***
आगे झुकने पर हमारे शरीर का वजन हवा के प्रतिरोधक दबाव को संतुलित करता है। यदि हम ऐसा न करें तो हवा हमें पीछे की ओर ढकेलती रहेगी।
- ***दौड़, जिमनेस्टिक्स जैसे खेलों के खिलाड़ी प्रतियोगिता में शामिल होने के पहले कसरत आदि क्यों करते हैं?***
वास्तव में जब हमारा शरीर स्थिर या आराम की स्थिति में होता है, तब मांसपेशियां भी काम की तैयारी में नहीं रहती हैं। वे कसी हुई रहती है और इस स्थिति में वे गति का प्रतिरोध करती हैं। इस प्रतिरोध को समाप्त करने के लिए ही खिलाड़ी कसरत करते हैं। कसरत मांसपेशियों को 'गरमाकर' उन्हें गति के लिए तैयार करती है।
- ***तुमने यह भी देखा होगा कि दौड़ के प्रारंभ में प्रतियोगी अपने हाथ और घुटनों पर झुककर तैयार रहता है। भला बताओ, वह इस तरह क्यों झुकता है?***
इस तरह झुकने से प्रतियोगी के पैर ज़मीन को अधिक बल से पीछे की ओर ठेल पाते हैं जिससे प्रतियोगी अपनी प्रारंभिक गति बढ़ा पाता है।

ते हैं,
यों में
। इन
अचल,
कहीं
होगी,
ई थी
था।

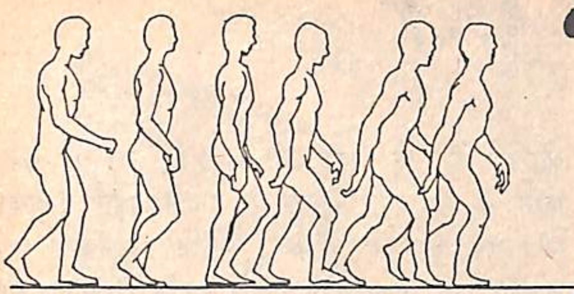

दौड़ना ...पैरों की उंगलियों पर

चलते समय, हमारे दोनों पैरों के पंजे पूरी तरह ज़मीन के संपर्क में रहते हैं ...किंतु अस्थायी रूप में। परंतु दौड़ते समय ऐसा नहीं होता है। अधिकांश संपर्क एक ही बिंदु पर होता है। और यह संपर्क भी क्षण भर के लिए टूटता है। इस विचित्र स्थिति को "हवा में उड़ने" की स्थिति कहते हैं।

हम चलने वाले

हमारे लिए चलना ही गति की सबसे जानी पहचानी विधि है। वास्तव में चलना इतना स्वाभाविक और सरल है कि चलते समय हमें पता ही नहीं लगता कि हमारे शरीर में क्या-क्या क्रियाएं होती रहती हैं।

चलने का मतलब है पूरे शरीर को आगे ढकेलना। हम अपने एक पैर से ज़मीन को तिरछा (विकर्ण) ढकेलते हैं। फलस्वरूप, ज़मीन हमें आगे और ऊपर ठेलती है। जैसे वह रबर की गेंद को ढकेल कर हवा में उछालती है। इससे हमारा दूसरा पैर उठकर आगे बढ़ता है। जैसे ही एक पैर ज़मीन पर पड़ता है, झट से दूसरा पैर उठता है और शरीर आगे बढ़ता है। इस पूरी प्रक्रिया में पलभर के लिए हमारा संतुलन बिगड़ता है। एक प्रकार से चलना क्रमशः हमारे संतुलन बिगड़ने और बनने की प्रक्रिया है।

कूदना ...हवा में

कूदने की प्रक्रिया ठीक वैसी ही है जैसे किसी स्प्रिंग को ज़मीन पर दबाना। हम स्प्रिंग को जैसे ही छोड़ते हैं वह हवा में उछलती है। ठीक इसी तरह हम अपने शरीर की पूरी ताक़त से ज़मीन को दबाते हैं। ज़मीन हमें विपरीत दिशा में ठेलती है। फलस्वरूप हम कुछ क्षणों के लिए हवा में उड़ते हैं।

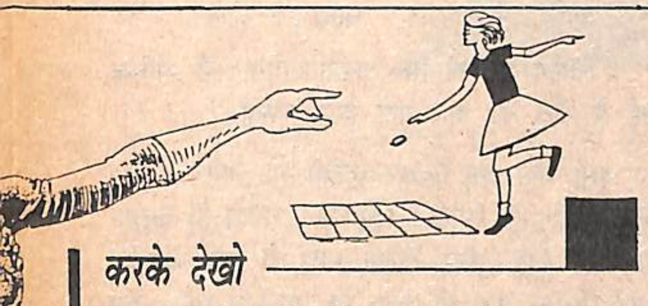

करके देखो

- *अगर फर्श पर तेल फैला हुआ हो तो चलना मुश्किल हो जाता है। क्यों? कारण पता लगाओ!*
- *अपने दोस्तों के साथ लंगड़ी खेलो या तीन पैर या बोरी दौड़ दौड़ो। और देखो, इन की गतियों में क्या अंतर है?*
- *रेत पर चलकर देखो। भला चलना इतना मुश्किल क्यों है?*
- *लगे हाथ कीचड़ में भी चलकर देखो। क्या फ़र्क लगा?*
- *हमारे आसपास कई सारे जानवर, पक्षी पाए जाते हैं। जैसे गौरेया, कबूतर, बिल्ली, कुत्ता, बकरी, गाय, घोड़ा, गधा इत्यादि। क्या तुमने कभी इनकी चाल पर ग़ौर किया है? क्यों न आज ही करें? अपने अवलोकन के आधार पर उनकी चाल के चित्र बनाओ।*

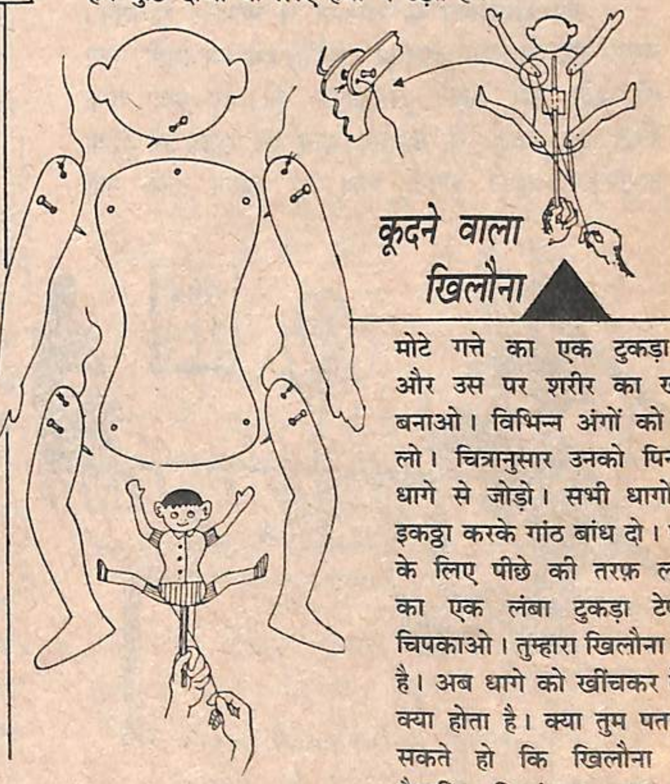

कूदने वाला खिलौना

मोटे गत्ते का एक टुकड़ा लो और उस पर शरीर का खाका बनाओ। विभिन्न अंगों को काट लो। चित्रानुसार उनको पिन या धागे से जोड़ो। सभी धागों को इकट्ठा करके गांठ बांध दो। पकड़ के लिए पीछे की तरफ़ लकड़ी का एक लंबा टुकड़ा टेप से चिपकाओ। तुम्हारा खिलौना तैयार है। अब धागे को खींचकर देखो, क्या होता है। क्या तुम पता कर सकते हो कि खिलौना किस वैज्ञानिक सिद्धांत पर काम करता है?

भूगर्भ की यात्रा

अब तक तुमने पढ़ा

प्रोफ़ेसर लिडेनब्रॉक को एक पुरानी किताब मिली। उस किताब से मिला एक पुराना पर्चा। उसमें एक संदेश था जो प्रोफ़ेसर और उनके सहायक के लिए पहेली बन गया। जब वह पहेली सुलझी तो उसमें भूगर्भ की यात्रा के लिए आदेश थे। प्रोफ़ेसर यात्रा पर जाना चाहते थे, पर उनका सहायक अधिक उत्सुक नहीं था। फिर थोड़ी ना-नुकर के बाद वह तैयार हो ही गया। और फिर शुरू हुई यात्रा। अब आगे पढ़ो....!

रात अंधेरी थी। हवा भी तेज़ चल रही थी। प्रकाश सिर्फ़ कहीं-कहीं ही दिखाई देता था। यात्रा का यह भाग मैं सदैव याद रखूंगा।

सुबह दस बजे हम कोपेनहेगेन पहुंचे। सामान लदवाकर हम एक होटल पहुंचे। जल्दी-जल्दी कुछ नाश्ता करने के बाद प्रोफ़ेसर ने मुझसे अपने साथ बाहर आने के लिए कहा। प्रोफ़ेसर भूगर्भ-शास्त्र के संग्रहालय की ओर जाना चाहते थे। होटल के दफ़्तर से संग्रहालय का रास्ता पूछ कर हम उसकी तरफ चल दिए।

उस संग्रहालय के संरक्षक थे प्रोफ़ेसर थामसन। चाचा जी का नाम जानकर उन्होंने हम पर बड़ी कृपा की और हमें अपने संग्रहालय की हर एक चीज़ दिखलाई। चाचा जी के हर प्रश्न का उत्तर भी दिया उन्होंने। पर हमने अपनी यात्रा का कारण उनसे नहीं

बताया। द्वीप से बाहर जाने के लिए नाव का प्रबंध करने में भी बड़ी तत्परता से उन्होंने हमारी सहायता की। एक छोटा-सा जहाज़ 2 जून को छूटनेवाला था। चाचाजी उस जहाज़ के कप्तान वार्यन से मिले और उनसे इतनी ज़ोर से हाथ मिलाया कि वह मारे दर्द के कराह उठे।

किराया ले चुकने के बाद कप्तान वार्यन बोले, "रविवार के दिन सुबह सात बजे आप लोग जहाज़ पर आ जाइए।"

प्रोफ़ेसर थामसन को उनके कष्ट करने के लिए धन्यवाद देकर हम फिर होटल वापस आए। मैं हर चीज़ बच्चों की-सी उत्सुकता से देख रहा था। उस द्वीप में हमें कई संकरी गलियों में से होकर चलना पड़ा। हम एक गिरजाघर के सामने रुके। वैसे कोई विशेष दिलचस्पी की बात तो उसमें नहीं थी लेकिन उसकी ऊंची मीनार ने चाचा जी का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया था। मीनार असाधारण रूप से ऊंची थी। ऊपर जाने के लिए सीढ़ियां भी बनी हुई थीं।

"आओ, ऊपर चलें," चाचा जी बोले।

"लेकिन मेरा तो सिर चकरानेलगेगा। मैं अधिक ऊंचाई से नीचे की ओर नहीं देख सकता।"

इसी क्षण एक रोबदार व्यक्ति मेरे सामने आया। ये थे इस द्वीप के गवर्नर। प्रोफ़ेसर ने फ़ौरन ही ढूंढ़कर वे पत्र उन्हें दिये। फिर डेनिश भाषा में कुछ बातचीत भी हुई जिसका एक भी शब्द मेरे पल्ले न पड़ा। इस बातचीत के परिणामस्वरूप गवर्नर ने सहायता, जो भी हो सकती थी, करने का वादा किया। मेयर ने चाचा जी का शानदार स्वागत किया।

एक व्यक्ति और भी था जिससे हम मिले। वे थे मि. फ्रिडेक्सन जो कि वहां के विज्ञान के स्कूल के अध्यापक थे। वे सिर्फ लैटिन और आइसलैंड में बोली जानेवाली भाषा ही बोल रहे थे। लैटिन भाषा में ही उन्होंने अपनी सारी सेवाएं अर्पित करने का वचन दिया। उनके साथ रहकर मुझे घर का अनुभव हो रहा था, क्योंकि जितने भी दिन मैं उस द्वीप में रहा था, केवल वे ही ऐसे व्यक्ति थे जिनसे मैं बात कर सका था।

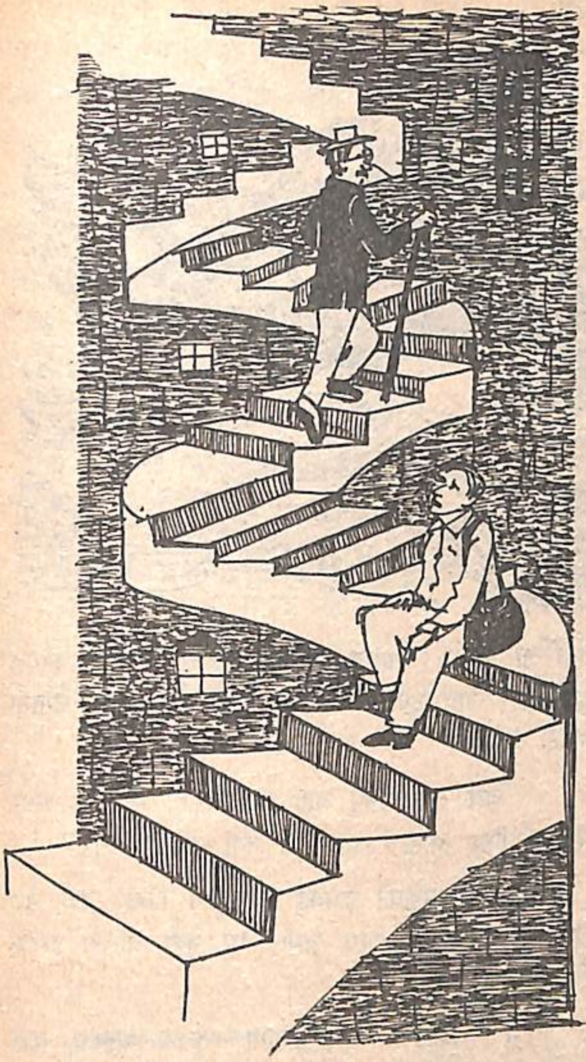

उनके मकान में केवल तीन ही कमरे थे जिन में से दो उन्होंने उदारतापूर्वक हमें सौंप दिए थे। दो कमरे मिल जाने से हमें कोई भी असुविधा नहीं होने पाई। इतना अधिक सामान वहां के भले आदमियों को ताज्जुब में डाल रहा था।

"आओ मैं कहता हूं तुमसे, समय न ख़राब करो।"

मुझे उनकी आज्ञा-पालन के लिए विवश हो जाना पड़ा। पहले चाचा जी चले। मैं उनके पीछे हो लिया। मैं बहुत डर रहा था। लगभग 150 सीढ़ियों तक चढ़ चुकने के बाद मेरा साहस समाप्त होने लगा। सीढ़ियां संकरी होती ही चली गई थीं। और लगता था जैसे आकाश तक चली गई हों।

अंत में मैं चिल्ला ही पड़ा, "अब मैं नहीं जाऊंगा।"

"क्यों, क्या तुम डर रहे हो?" प्रोफ़ेसर बोले, "चले आओ।"

मुझे उनका कहना मानना ही पड़ा। मुझे लग रहा था कि हवा के तेज़ झोंकों से मीनार हिल रही है। मेरा सिर चकराने लगा। मैंने आंखें बंद कर ली। मुझे लग रहा था जैसे मैं बीमार होऊं।

अंत में मीनार के ऊपर जा ही पहुंचा किसी तरह।

"नीचे देखो," चाचा जी बोले, "अच्छी तरह देखो। हमें नीचे देख लेने की आदत डाल लेनी चाहिए।"

मैंने आंखें खोलीं। सारे मकान छोटे और चिपटे दिखाई पड़ रहे थे। मेरे सिर पर ही बादल उड़ रहे थे। लेकिन ऐसा लग रहा था जैसे कि वे तो एक स्थान पर स्थित हैं और पूरी दुनिया उड़ी जा रही है। कुछ ही दूर पर दिख रही थी देहात की हरियाली और समुद्र की नीलिमा। यह सबक़ सीखने में एक घंटा लगा। नीचे आते-आते मेरे पैर तो जैसे एकदम बेकार ही हो गए थे। पांच रोज़ तक मैं यही सबक़ सीखता रहा ठीक इसी तरह से। अब मेरा सारा भय दूर हो चुका था।

अंत में यात्रा पर चलने का दिन आया। हमारे भले दोस्त प्रोफ़ेसर थामसन ने हमें कुछ पत्र भी दिए द्वीप के गवर्नर और मेयर के नाम। इसके लिए चाचा जी ने जोरों से हाथ मिलाकर धन्यवाद प्रकट किया।

2 तारीख की सुबह छः बजे हमारा सामान जहाज़

पर पहुंच गया और हमारी यात्रा शुरू हो गई।

"कैसी हवा चल रही है?" चाचा जी ने पूछा।

"बहुत बढ़िया," कप्तान ने उत्तर दिया "दक्षिण पूर्व से आ रही है।"

"हम कब पहुंचेंगे?" चाचा जी ने पूछा।

"अगर उत्तरी पश्चिमी हवा न चली," उत्तर मिला तो "दस दिन में पहुंचेंगे।"

डेनमार्क से आइसलैंड द्वीप की ओर जाते समय कोई विशेष बात नहीं हुई। मैं तो बिलकुल ठीक रहा, लेकिन चाचा जी बीमार पड़ गए और सारे समय लेटे ही रहे। आप सोच सकते हैं कि वे कितने अधिक क्रुद्ध और लज्जित हुए होंगे। मुझे उनके लिए दुःख नहीं हो सका।

अंत में तूफानों और ख़तरनाक चट्टानों का सामना करके हम अपनी मंज़िल पर पहुंचे। चाचा जी का चेहरा सफ़ेद हो रहा था और वे बहुत थके हुए जहाज़ से उतरे। फिर भी वे प्रसन्न थे। सारा सामान उतरवाकर एक डोंगी में रखवाया गया जो कि हमारी प्रतीक्षा पहले ही से कर रही थी।

चाचा जी ने मुझे इस समय दो बार इस बात की चेतावनी दी कि यात्रा का उद्देश्य मैं किसी से बतलाऊं नहीं। कुछ मिनटों में ही हमारी नाव समुद्र के किनारे आ लगी।

एक दिन चाचा जी बोले, "मैं ज़रा पुस्तकालय तक जा रहा हूं। शायद वहां इस संबंध में कोई किताब हमें मिल जाए और यदि ऐसा हुआ तो मैं उसे देखना पसंद करूंगा।"

"जब तक आप वहां जा रहे हैं, मैं ज़रा शहर में घूम फिर आऊं। आप भी क्यों नहीं चलते?"

"नहीं, मुझको इसकी बिलकुल फ़िक्र नहीं है। द्वीप का दिलचस्प भाग ज़मीन पर नहीं बल्कि इसके नीचे है।"

मैं इधर-उधर घूमने लगा। रास्ता भूलना यहां बिलकुल मुश्किल था। क्योंकि दो ही तो सड़कें थीं वहां पर। इसलिए किसी से रास्ता पूछने की आवश्यकता नहीं थी। और मैंने पूछा भी नहीं।

यह शहर दो चिपटी और नम पहाड़ियों के बीच स्थित है। इसके एक ओर तो समुद्र तक लावा की चादर सी बिछी हुई है, दूसरी ओर फ्राक्सा की खाड़ी है। दोनों सड़कें समुद्र तट की दिशा में ही गई हैं।

इस सड़क के लकड़ी वाले मकानों में व्यापारी लोग रहते हैं। दूसरी सड़क, जो कुछ पश्चिम की ओर हटी हुई है, एक छोटी झील तक गई है। सुनसान और उदास दिखाई पड़ने वाली सड़कों, भूरी घास और भद्दे से बगीचों में होता हुआ मैं इधर-उधर घूमता रहा। पास की ही पहाड़ी पर मैंने एक स्कूल देखा जिसमें डैनिश, अंग्रेज़ी और फ्रेंच भाषाएं सिखाई जाती थीं। लेकिन मुझे कहते हुए शर्म आती है कि मैं इनका एक भी शब्द नहीं जानता।

तीन घंटे में मैंने पूरा शहर घूम डाला। मैंने उसे बहुत उजाड़ स्थान पाया। कहीं भी वृक्षों और घास का पता नहीं, हर जगह वही पहाड़ी चट्टानें।

घूमते समय मैं कुछ लोगों से मिला था। व्यापार वाली सड़क से लौटते समय अधिकांश लोगों को मैंने मछलियां ही बेचते और उनको पैक करते हुए पाया। मुझे उनके लिए बड़ा दुःख हुआ। द्वीप में रहकर वे बेचारे दुनिया से कितनी दूर हो गए थे। औरतें थीं तो सुंदर लेकिन प्रसन्नता किसी के भी चेहरे पर न थी। अजीब सी मुर्दनी छाई हुई थी।

घूम-घाम कर जब मैं घर लौटा तो चाचा जी को मि. फ्रिडक्सन के साथ पाया।

भोजन तैयार था। चाचा जी पिछले कई दिनों से ठीक से खाना नहीं खा रहे थे। पर आज भोजन के समय उनकी खुशी देख सहसा विश्वास न होता था। आज तो लगता था कि वे खाना बंद ही न करेंगे कभी। वे बड़ी ही बेतकलुफ़्फ़ी से खाने पर हाथ साफ़ कर रहे थे।

उनकी बातचीत बहुत ही थोड़ी समझ में आ सकी। सिर्फ़ वैज्ञानिक विषयों के संबंध में ही बातें कर रहे थे—ख़ास कर भूगर्भशास्त्र के संबंध में। लेकिन चाचाजी बहुत ही सावधानी से बातें कर रहे थे। क्योंकि मुझको दी गई चेतावनी वे स्वयं भूले नहीं थे। जिसमें उन्होंने मुझे अपने इरादों के संबंध में एक शब्द भी किसी से न कहने के लिये कहा था।

मि. फ्रिड्रिक्सन का पहला शब्द यह था कि चाचा जी को पुस्तकालय कैसा लगा।

"पुस्तकालय?" चाचा जी बोले "मुझे तो कुछ बेकार सी उबा देने वाली पुस्तकें ही दिखीं। ऐसे रद्दी पुस्तकालय का उपयोग ही क्या है?"

"फिर भी," मि. फ्रिड्रिक्सन बोले, "हमारे पास 8000 पुस्तकें हैं जिनमें कुछ बड़ी अमूल्य और लगभग अप्राप्य ही हैं।"

"वे 8000 पुस्तकें हैं कहां?"

"सारे द्वीप भर में फैली हुई हैं। इस द्वीप में ऐसा कोई भी नहीं है जो पढ़ न सकता हो या जो पढ़ता न हो। हम सभी द्वीपवासी पढ़ने का बड़ा शौक रखते हैं। हम अपनी पुस्तकें किसी ऐसे स्थान में रख देने से, जहां किसी की पहुंच न हो सके, उन्हें एक दूसरे को देते रहना अधिक अच्छा समझते हैं। ये पुस्तकें स्वतंत्र रूप से एक से दूसरे को दी जाती रहती हैं। वे बार-बार पढ़ी जाती हैं और साल दो साल बाद पुनः वापस आती हैं।"

"पर क्या," चाचा जी बोले, "विदेशी यात्रियों को ये अधिकार प्राप्त हैं?"

"हमारा पहला कर्त्तव्य है अपने लोगों को अध्ययन की सुविधा देना। मैं एक बार फिर कहता हूं कि अध्ययन का प्रेम यहां के रक्त में ही बसा हुआ है," मि. फ्रिड्रिक्सन बोले, "यदि आप बताएं कि आप किन पुस्तकों को पाना चाहते हैं तब शायद उनके संबंध में मैं आपको कुछ बता सकूं।"

मैंने चाचा जी की ओर देखा। वे चुप थे।

(अगले अंक में जारी)

जूलेवर्न के उपन्यास '*ए जर्नी इन टू दी सेंटर ऑफ अर्थ*' का अनुवाद। अनुवादक : प्रभात किशोर मिश्र। सौजन्य : इंडियन प्रेस, इलाहाबाद। सभी चित्र : शोभा घारे।

हंस

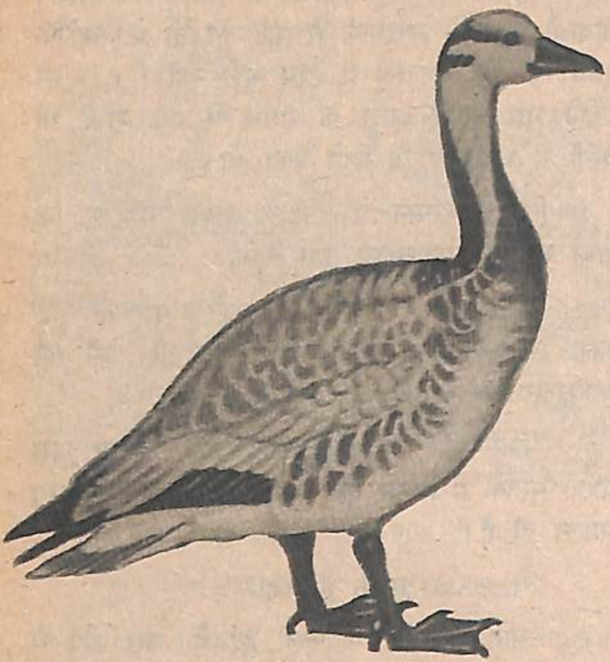

हंस (बार हेडेड गूज़) का नाम लेते ही हमारी आंखों के सामने लंबी गर्दन वाले और पूरी तरह सफ़ेद रंग के जलचर पक्षी का चित्र उभर आता है। इस लंबी गर्दन वाले सफेद पक्षी को सरस्वती के वाहन के रूप में भी दिखाया जाता है। किंतु तुम्हें यह जानकर शायद आश्चर्य होगा कि यह पक्षी भारत में पाया ही नहीं जाता। हां, कुछ चिड़ियाघरों में ज़रूर इस प्रकार के हंस दिखाई देते हैं, किंतु इन्हें दूसरे देशों से मंगवाया जाता है।

भारत में जिस पक्षी को हंस या राजहंस कहते हैं वह एक प्रकार की बत्तख है जिसे यहां चित्र में दिखाया गया है। इसके सिर और गर्दन के कुछ भाग को छोड़कर शेष शरीर भूरा, चितकबरा होता है। इसकी टांगें और चोंच पीली होती है। इसकी सबसे प्रमुख पहचान, इसके सिर पर पाई जाने वाली काले रंग की दो पट्टियां हैं। नर और मादा समान दिखाई पड़ते हैं।

गर्मी का मौसम लद्दाख और तिब्बत में बिताकर हंस अक्टूबर के लगभग भारत में आना शुरू कर देते हैं, लेकिन अधिकांश पक्षी उत्तरी भारत और असम तक ही पहुंच पाते हैं। मध्य और दक्षिणी भारत में ये कम संख्या में पाए जाते हैं।

हंस का मुख्य भोजन चने और गेहूं के नरम पौधे हैं। उत्तरी भारत में रबी की प्रमुख फसलें होने के कारण ये ठंड के मौसम में आसानी से उपलब्ध होते हैं। बड़ी नदियों के बीच में पाए जाने वाले रेत के टीलों पर हंस दिन में आराम करते हैं। इस प्रकार ये शिकारियों को दूर से ही देख लेते हैं और मनुष्य की ज़रा-सी भी आहट पाते ही उड़ जाते हैं। शाम होते ही ये चने और गेहूं के खेतों में पहुंच जाते हैं और रात भर वहां चरते रहते हैं। इस कारण फसलों को काफ़ी नुक़सान भी पहुंचाते हैं।

गर्मी के मौसम में हिमालय पर स्थित झीलों के किनारे उगने वाली घास में गड्ढा बनाकर और उसमें नरम पर बिछाकर हंस अपना घोंसला बनाते हैं। इसमें मादा तीन-चार अंडे देती है जो बहुत कुछ मुर्गी के अंडों के समान दिखाई पड़ते हैं।

हंस का नाम लेते ही अनायास एक बात याद आ जाती है। इस पक्षी के बारे में यह किंवदंती प्रचलित है कि यदि इसके सामने दूध और पानी मिला कर रख दिए जाएं तो यह दोनों को अलग-अलग कर देता है। यह कहना मुश्किल है कि यह धारणा कैसे बनी, लेकिन सच्चाई यह है कि हंस या अन्य कोई पक्षी या अन्य कोई भी जंतु दूध और पानी को इस तरह अलग-अलग नहीं कर सकता।

☐ अरविंद गुप्ते

(चित्र सौजन्य : बॉम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसायटी)

चकमक के कुछ पाठकों ने यह सुझाव दिया है कि इस स्तंभ में प्रकाशित होने वाले पक्षी के विवरण में हिंदी के साथ-साथ अंग्रेज़ी नाम भी हो तो अच्छा रहेगा। इससे जो लोग हिंदी नाम से परिचित न हों वे अंग्रेज़ी नाम से उस पक्षी को जान सकें। इस सुझाव को ध्यान में रखकर पिछले अंकों में प्रकाशित पक्षियों के अंग्रेज़ी नामों की सूची देवनागरी में यहां दी जा रही है।

हिंदी नाम	अंग्रेजी नाम
कौआ	क्रो
लटोरा	शराइक
देशी मैना	इंडियन मैना
दहियल	मैगपाई रॉबिन
थिरथिरा	रेड स्टार्ट
मोर	कॉमन पी फाउल
चुपका	स्पोटेड सैंड पाइपर
चहा	फन टेल स्नाइप
खंजन	लार्ज पाइड वैगटेल
सुरखाब	रडी शेल ड्रेक

ठंडी हो गई चाय

पापा उलझे अखबारों में,
कौन उन्हें बतलाय!
हुई अरे रे कब की ठंडी,
रक्खी रक्खी चाय!

कब तक कप में रख पाती वह,
गर्मी और संभाल!
सारी ऊर्जा मिली हवा में,
निकल - निकल तत्काल!

ताप, हवा औ द्रव का, सुन लो,
है समान स्वभाव;
ऊपर से नीचे को होता,
उनका सदा बहाव!

तब तक चलता रहता है क्रम
पल भर रुके बग़ैर;
जब तक पूरा ख़तम न होता,
ऊंच - नीच का बैर!

तापमान था अधिक चाय में,
पास हवा में न्यून;
इसीलिए कर गई चाय को,
ताप, ताप से सून!

फ़ुरसत पा, पापा ने देखा,
पड़ी चाय का हाल;
एक घूंट पी बोले, 'जल्दी,
लाना, ताज़ी, ढाल!

और सुनो, रुक ज़रा बाद में,
पीनी हो जो चाय;
तुरत प्लेट से कप को पूरा,
ढक रखना, ओ भाय!

□ रामवचन सिंह 'आनंद'

चित्र : जया

कर्तव्य

"अरे सुमीत, उठ न सवा आठ बज गए, पेपर देने नहीं जाना है क्या?" आवाज़ मेरे कानों में पड़ी तो मैं अचानक चौंक कर उठ बैठा। 'आज तो पेपर है और मैं अभी तक सो रहा हूं।' "क्या बज गया?" मैंने मां से पूछा।

"सवा आठ बजे हैं।" मां ने बताया, "एक बार पहले भी तुझे हिलाया, तू 'हूं' कहकर फिर सो गया।"

"सवा आठ? बाप रे। आज तो हो गए लेट।" मैं फुर्ती से पलंग से नीचे उतरा और तैयार होने लगा। दरअसल रात को देर तक पढ़ता रहा था। इसलिए आंख देर से खुली। नींद अभी भी आ रही थी लेकिन मैं ज़बर्दस्ती नींद को भगाने की कोशिश कर रहा था।

देर होने के कारण नाश्ता भी ढंग से नहीं किया केवल एक टोस्ट और एक गिलास दूध गले में उतार कर स्कूल के लिए भागा। कितनी ही तेज़ साइकिल दौड़ाता, अभी आधा घंटा तो लगना ही था नौ बजे पेपर था। मैंने घड़ी में समय देखा, नौ से एक मिनट ऊपर ही था। 'अब कम से कम बीस मिनट तो लेट हो ही जाऊंगा।' मैंने सोचा और साइकिल की रफ़्तार और तेज़ कर दी।

आज पहली बार मुझे कोफ़्त हो रही थी कि इस छोटी सी जगह में पिताजी का ट्रांसफर क्यों हुआ? अच्छे-भले बड़े शहर में रह रहे थे। कहीं जाना हुआ, बस पकड़ ली। देर हो रही हो तो स्कूटर कर लिया। पर यहां इस छोटी सी जगह में न तो बसें चलती थीं न ऑटो रिक्शा। ट्रैफ़िक का तो नामोनिशान ही न था। उबड़-खाबड़ रास्ता था जिस पर कभी कभार मिलिट्री के ट्रक और जीपें नज़र आ जाती थीं। जिस जगह हम रहते थे, वहां से स्कूल करीब सात किलोमीटर था। रास्ते के दोनों और जंगल था। बिल्कुल सुनसान रास्ता। साइकिल ज़्यादा तेज़ चला भी तो नहीं सकता था, सड़क पर तीखे मोड़ थे। ऐसे ही एक मोड़ पर जब मुड़ने लगा तो मुझे सड़क पर कुछ पड़ा नज़र आया। थोड़ा और पास जाने पर पता चला कि कोई बेचारी बुढ़िया थी। मैंने पास पहुंचकर साइकिल रोकी। स्टैंड पर साइकिल लगा कर मैं बुढ़िया के पास पहुंचा। किसी गाड़ी से टक्कर हुई लगती थी। बुढ़िया के पास कुछ ही दूर एक लकड़ियों का गट्ठर बिखरा हुआ पड़ा था। शायद बुढ़िया जंगल से लकड़ी काट कर ला रही होगी कि किसी ने उसको टक्कर मार दी और भाग गया।

बूढ़ी औरत बेहोश थी, किंतु सांस और नब्ज़ चल रही थी। चोट अधिक तो नहीं थी लेकिन शायद उसका एक हाथ टूट गया था। मेरे शरीर में एक झुरझुरी सी हुई। शुक्र है मरी नहीं। मैं उसे अस्पताल ले जाने को सोच ही रहा था कि मेरे अंदर न जाने कौन बोल पड़ा—'क्या कर रहे हो? पेपर नहीं देना है? वैसे ही बहुत देर हो चुकी है। छोड़ो इसे और जल्दी से साइकिल पर बैठ कर भागो।'

'लेकिन ऐसे तो ये मर जाएगी। खून बह रहा है और पता नहीं कहां-कहां चोट लगी हो।' मैंने फिर सोचा—'अभी तो समय है। इसकी जान बच सकती है यदि अस्पताल ले जाऊं तो।'

'बेवकूफ मत बनो। एक ग़रीब बुढ़िया जो कि जंगल से लकड़ी काट कर गुज़ारा करती है, तुम्हारी कोई लगती भी नहीं, मर भी जाएगी तो क्या फ़र्क पड़ेगा? तुम अपना सोचो। पेपर नहीं दोगे तो फेल हो जाओगे। साल बरबाद हो जाएगा। तुम्हारी बदनामी होगी, तुम्हें चिढ़ाया जाएगा।' मेरे अंदर का स्वार्थ बोल रहा था।

इस समय मुझे अपने स्वार्थी मन की ही बात ठीक लग रही थी। 'फेल हो गया तो माता-पिता क्या सोचेंगे? कितना दुख होगा उन्हें? फिर इस बुढ़िया को मैंने तो टक्कर मारी नहीं, मेरी कोई ज़िम्मेदारी नहीं है। कोई न कोई ले ही जाएगा इसे।'

यही सब सोचकर मैं अपनी साइकिल पर बैठा और चल दिया। पर छह-सात पैडल मारे ही थे कि पैर जम से गए। पैडल लग ही नहीं रहे थे। बार-बार सड़क पर पड़ी, खून से लथपथ उस बुढ़िया की तस्वीर आंखों के आगे नाच रही थी।

'सुमीत, क्या कर रहे हो? एक इंसान मर रहा है और तुम्हें अपने पेपर की पड़ी है? बस यही है तुम्हारी इंसानियत?' मेरे अंदर का इंसान जाग उठा था। 'मुसीबत में पड़े मनुष्य की मदद करना हर इंसान का कर्तव्य है। तुम इस ज़िम्मेदारी से भाग नहीं सकते। याद रखो जैसे आज तुम मदद नहीं कर रहे, यदि कल तुम्हारे साथ भी यही घटता है तो कौन तुम्हारी मदद करेगा?'

मेरी गर्दन शर्म से झुक गई। इन तर्कों का मेरे

पास कोई जवाब न था। मैंने साइकिल मोड़ी और वापिस लौट आया उस बूढ़ी औरत के पास। अब मेरे सामने समस्या थी किस तरह से बुढ़िया को अस्पताल पहुंचाया जाए? किसी वाहन के आने की प्रतीक्षा करनी मूर्खता थी। अंततः मैंने निश्चय किया कि साइकिल पर ही बुढ़िया को लाद कर अस्पताल ले जाऊं।

मैंने स्टैंड पर साइकिल खड़ी की और बुढ़िया को उठाने की कोशिश करने लगा। लेकिन तभी ...मुझे याद आया स्कूल में पढ़ाया गया प्राथमिक उपचार का पाठ। बुढ़िया का हाथ टूटा हुआ था। उसे इसी हालत में ले जाने से बात बिगड़ सकती थी। उसके हाथ से खून भी बह रहा था। सबसे पहले मुझे खून रोकना था। चोट हाथ के कोहनी के नीचे वाले हिस्से में थी। इसका मतलब था कि यदि मैं बांह के ऊपर वाले हिस्से में कस के एक पट्टी बांध देता तो खून ले जाने वाली नस दब जाती और खून का बहना बहुत कम हो सकता था।

अब पट्टी तो मेरे पास थी नहीं। मैंने अपना रुमाल निकाला और बुढ़िया के हाथ के कोहनी के ऊपर वाले हिस्से में कस के बांध दिया। अब मुझे टूटी हुई हड्डी का भी उपचार करना था। क्योंकि साइकिल पर झटके लगने से, टूटी हुई हड्डी और टूट सकती थी या कुछ और नुक्सान भी हो सकता था।

इसलिए बुढ़िया के हाथ पर एक लकड़ी का टुकड़ा या ऐसा कुछ बांधना आवश्यक था जो कि टूटी हुई हड्डियों को यथास्थान रखे। यहां वे लकड़ियां काम में आई जो कि बुढ़िया काट कर ला रही थी। एक अच्छी और पतली लकड़ी का टुकड़ा उठा कर मैंने अपनी बेल्ट उतारी और अपनी ड्रेस की टाई भी उतारकर उसकी सहायता से बुढ़िया के हाथ पर वह लकड़ी इस प्रकार से बांधी कि हाथ के टूटे हुए हिस्से बिल्कुल भी न हिलें।

फिर बड़ी मुश्किल से मैंने बुढ़िया को साइकिल पर टिकाया और चल पड़ा अस्पताल की ओर। बुढ़िया का टूटा हुआ हाथ मैंने अपने कंधे पर रख लिया। जिससे उसे अधिक झटके न लगें।

अस्पताल करीब होते हुए भी मुझे आधा घंटा और लग गया। मैं सोच तो रहा था कि कहीं अस्पताल वाले बुढ़िया को भर्ती करने में देर न लगा दें। किंतु उन्होंने मेरी समस्या को देखते हुए बिना किसी देर के, रजिस्टर में साइन करवा कर मुझे जाने दिया और उस बूढ़ी औरत को भर्ती कर लिया।

मैं वापिस अपनी साइकिल पर पहुंचा। जगह-जगह खून लगा हुआ था। मैंने टाईम देखा। साढ़े दस बजे थे। पेपर नौ बजे शुरू होना था डेढ़ घंटा भर यह

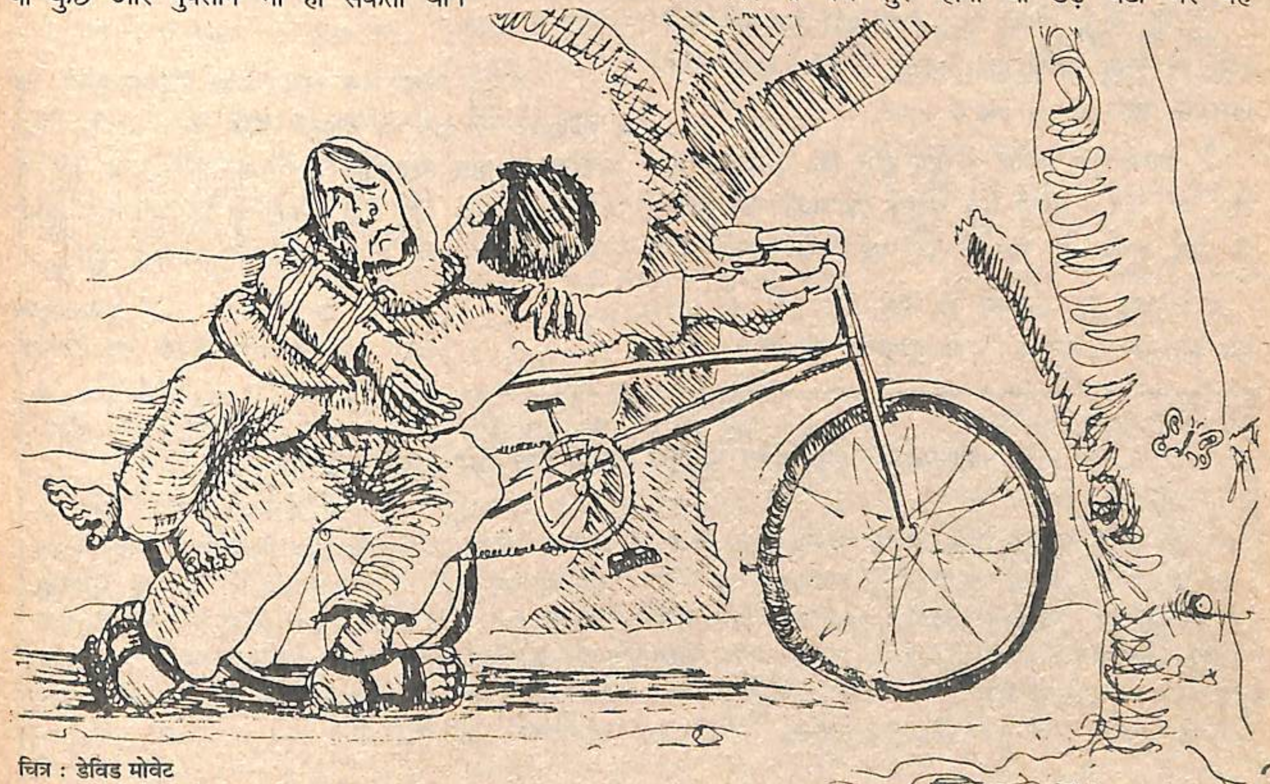

चित्र : डेविड मोवेट

और अभी जो पहुंचने में समय लगेगा उसे मिला कर पूरे दो घंटे का समय तो बरबाद हो ही चुका था। पेपर का सिर्फ एक घंटा ही बचा था। मैं क्या कर लेता इतने से समय में?

'फिर भी, पास होने लायक पेपर तो कर ही सकता हूं।' यह सोच कर मैंने साइकिल दौड़ा दी। गिरते-पड़ते स्कूल पहुंचा, कपड़ों पर खून और मिट्टी लगी थी। पसीने से बदन तर हो रहा था। मेरी हालत देख कर स्कूल में सभी चौंक गए। मैं परीक्षा भवन में घुसने लगा तो मुझे रोक दिया गया। चपरासी ने बताया कि पेपर के शुरू होने आधे घंटे बाद प्रवेश करने की अनुमति नहीं है।

मैं परेशान तो पहले ही था। यह देखकर कि अब मैं पेपर में भी नहीं बैठ सकता, मेरी रुलाई छूटने को हो गई। संयोग से वहां से प्रिंसिपल जा रहे थे। उन्हें आवाज़ दी। मुझे इस हालात में देख कर वे भी चौंक गए।

मैंने उन्हें सारी बात बता दी और विनती की, कि बाक़ी बचे समय में मुझे पेपर देने दिया जाए। केवल पचास मिनट बचे थे। प्रिंसिपल ने अनुमति दे दी। मेरी जान में जान आई। जल्दी से अंदर घुसा और अपनी सीट पर बैठकर प्रश्न हल करने लगा।

मेरे साथी अपना पेपर करना छोड़ कर मुझे घूरने लगे थे किंतु किसी की परवाह न करते हुए अपने पेपर में ध्यान दे रहा था।

अभी दस मिनट ही हुए होंगे कि प्रिंसिपल मेरी सीट पर आए। उन्होंने मुझे बताया कि उन्होंने अस्पताल में फोन करके मेरी सच्चाई का पता लगा लिया है।

"अब तुम आराम से पेपर दो। तुम्हें पूरे तीन घंटे का समय मिलेगा।" वे मुस्कुराते हुए बोले।

मैं हैरान रह गया। "धन्यवाद।" मैंने कृतज्ञता से कहा।

पेपर पूरा करने के बाद मैं प्रिंसिपल के ऑफिस में पहुंचा। वे मुझे देखते ही बोल पड़े, "आओ सुमीत, बैठो। पेपर तो ठीक हो गया न?"

"सर, यदि आप पूरा समय न दिलवाते तो मैं शायद फेल हो जाता।" मैंने कहा। "मुझे समझ नहीं आता मैं आपका धन्यवाद कैसे करूं?"

"इसमें धन्यवाद की कोई बात नहीं है सुमीत," प्रिंसिपल ने कहा, "मुझे तो खुशी है कि तुम जैसे बच्चे भी हैं जो मानवता के प्रति अपना कर्त्तव्य समझते हैं और उसे निभाने में ज़रा भी हिचकिचाते नहीं हैं। तुमने उस घायल बूढ़ी औरत को समय पर अस्पताल पहुंचाकर अपना फ़र्ज पूरा किया और मैंने तुम्हें पूरा समय दिलवा कर अपना कर्त्तव्य निभाया। पता है, डाक्टर साहब कह रहे थे कि यदि तुम समय पर प्राथमिक उपचार करके खून का बहना नहीं बंद करते तो शायद उस बेचारी की मौत भी हो सकती थी। हमें तुम पर गर्व है बेटे।"

उनकी यह बात सुनकर मुझे मन ही मन एक गहरा संतोष हुआ। मुझे खुशी थी कि अपने स्वार्थ की आवाज़ न सुनकर मैंने वह किया जो मानवता के प्रति मेरा फ़र्ज था।

क़रीब बीस दिन बाद वही बुढ़िया हमारे घर आई, उसके हाथ में प्लास्टर बंधा था। बोली, "मुझ ग़रीब के पास आशीर्वाद के सिवा तो कुछ है नहीं जो तुम्हें दे सकूं। यही कह सकती हूं कि सफलता तुम्हारे क़दम चूमे।" मेरी आंखें खुशी से डबडबा आईं।

☐ **पुनीत गुप्ता**

(सौजन्य : जे.ए.सी. ट्रस्ट, नईदिल्ली)

चकमक इन रेल्वे स्टेशन बुकस्टाल पर मिल रही है

अलीगढ़, बरेली, देहरादून, हापुड़, हरदोई, हरिद्वार, हिसार, कानपुर, लखनऊ नं. 2, मिरजापुर, मुरादाबाद, नज़ीबाबाद, प्रतापगढ़, रायबरेली, रिवाड़ी, शाहजहांपुर, वाराणसी, भागलपुर, धनबाद, गया, हावड़ा, मुगलसराय, पटना, बिलासपुर, बस्ती, छुपरा, गोंडा, गोरखपुर, हाजीपुर, मुज़फ्फरपुर, दुर्ग, रायगढ़, रायपुर, टाटानगर, भिलाई, बरौनी, समस्तीपुर, सीतापुर, अंबरनाथ, अहमदनगर, अकोला, आमला, बडनेरा, हैदराबाद, सिकंदराबाद, बांदा, भोपाल, भुसावल, बीना, ग्वालियर, झांसी, कटनी, खंडवा, मथुरा, नरसिंहपुर, राजा की मंडी, सतना, सागर, बंबई वी.टी. (1), बंबई वी.टी. (2), आबू रोड़, आगरा फोर्ट, अहमदाबाद नं. 1, अहमदाबाद नं. 2, अजमेर, बड़ौदा, गंगापुर सिटी, इंदौर, जयपुर, मारवाड़, महू, रतलाम और उज्जैन ।

सवालीराम

☐ *मस्तिष्क ज्वर क्या है?*

पिछले कुछ सालों में शायद यह ज्वर बहुत तेज़ी से सामने आया है। पिछले साल तो इसका जबरदस्त हल्ला था। और उसमें भी तरह-तरह की अफवाहें थीं। बहरहाल... मस्तिष्क ज्वर यानी मेनिनजाइटिस का मतलब है मस्तिष्क में बुखार। अब यह बुखार कोई हमारे मस्तिष्क में नहीं आता, आता तो शरीर को ही है पर मस्तिष्क में हुए कुछ संक्रामणों के कारण। इस ज्वर का कारण तंत्रिका तंत्र में हुई क्षति या सीधे मस्तिष्क में हुए संक्रामण भी हो सकते हैं। या कभी शरीर के किसी और भाग में हुए संक्रामण से भी उत्पन्न हो सकता है।

वास्तव में मस्तिष्क ज्वर का संबंध मस्तिष्क व रीढ़ की तंत्रिका को ढकने वाली झिल्ली से होता है। यह झिल्ली तीन झिल्लियों का एक समूह है जिसे मेनिनजेस कहते हैं। इसी से इसका नाम मेनिनजाइटिस, यानी मेनिनजेस में जलन, पड़ा। ऐसे लगभग पचास प्रकार के रोगाणु पहचाने जा चुके हैं जो इस बीमारी का कारण बन सकते हैं। इनमें बैक्टीरिया, वायरस, अमीबा या फफूंद आदि शामिल हैं।

जब भी मेनिनजेस झिल्ली में मामूली क्षति होती है तब केवल ऊपरी झिल्ली-ड्यूरा मेटर-में ही जलन पैदा होती है। चूंकि यह झिल्ली अन्य दो झिल्लियों के मुकाबले काफ़ी मज़बूत होती है, इसलिए उत्पन्न होने वाली जलन बाकी दो झिल्लियों तक नहीं पहुंच पाती है और जल्द ही ख़त्म भी हो जाती है। लेकिन जब भी निचली दो झिल्लियां (एरक्नॉइड व पिया मेटर) प्रभावित होती हैं तो ख़तरे की बात हो सकती है।

सभी रोगाणुओं से होने वाले मस्तिष्क ज्वर के लक्षण लगभग एक जैसे होते हैं। आमतौर पर फैलने वाला मस्तिष्क ज्वर बैक्टीरिया से फैलता है।

बैक्टीरिया शरीर में प्रवेश कर नाक व गले की झिल्लियों में जलन पैदा करता है। संक्रामण की इस अवस्था में कोई खा़स लक्षण प्रकट नहीं होते, सिर्फ़ गला थोड़ा-बहुत ख़राब हो सकता है। पर हां इससे ग्रस्त रोगी मस्तिष्क ज्वर को फैला सकता है। उसके खखार की बूंदें हवा में उड़कर दूसरों तक पहुंच सकती हैं और उनमें उपस्थित बैक्टीरिया दूसरे व्यक्ति को प्रभावित कर सकता है। लेकिन यह बैक्टीरिया (मेनिनजोकॉकस बैक्टीरिया) ज़्यादा समय तक हवा में जीवित नहीं रह पाता है। सूर्य की रोशनी, 40 डिग्री सेल्सियस से अधिक तापमान व तापमान में एकाएक बदलाव को वह सहन नहीं पाता और मर जाता है। आमतौर पर रोगाणु के फैलाव की संभावनाएं वहां अधिक होती है जहां बहुत सारे लोग साथ-साथ रहते हैं, जैसे स्कूल, हॉस्टल आदि। शुष्क और ठंडे वातावरण में फैलाव होने की आशंका अधिक रहती है, इसीलिए इस बीमारी के अधिकांश मामले जनवरी और अप्रैल के बीच होते हैं। और प्रभावित होने वालों में भी बच्चे और किशोर ही अधिक होते हैं।

संक्रामण के बाद यह ज़रूरी नहीं है कि बीमारी अधिक गंभीर रूप धारण करे। जहां भी यह बीमारी होगी, वहां संक्रामण कुछ लोगों को छोड़कर सभी में फैलेगा। जो बचेंगे उनमें वास्तव में प्रतिरोधी क्षमता विकसित हो चुकी होगी। 70 प्रतिशत मामलों में बीमारी इसी अवस्था में ही ठीक हो जाती है। कुछ मामलों में बीमारी का रूप बहुत हल्का होता है और कुछ में दो से पांच दिन के भीतर यह गंभीर रूप धारण कर लेती है। और कुछ मामलों यह रूप इतना गंभीर होता है कि मरीज़ दो घंटे के अंदर-अंदर मर सकता है। कुछ ऐसे मामले भी होते हैं जिनमें बीमारी कम गंभीर रूप में लेकिन लंबे समय तक बनी रहती है। जिन व्यक्तियों को मामूली संक्रामण होता है, उनमें प्रतिरोधी क्षमता विकसित हो जाने के कारण रोगाणुओं द्वारा दोबारा संक्रामण इतना आसान नहीं होता।

गंभीर मामलों में नाक व गले की झिल्ली के ज़रिए यह रोगाणु साधारणतः खून में पहुंचता है और इस माध्यम से संक्रामण आगे मेनिनजेस तक पहुंचता है। मरीज़ को भंयकर सिरदर्द, बुखार व बेचैनी महसूस होती है। कुछ मामलों में विशेषकर बच्चों में, उल्टियां, ऐंठन व प्रकाश के प्रति संवेदनशीलता के लक्षण भी दिखाई पड़ते हैं। पर इन लक्षणों के आधार पर भी पक्के तौर पर यह कहना आसान नहीं होता है कि यह मस्तिष्क ज्वर ही है, क्योंकि ये लक्षण अन्य बीमारियों में भी देखने को मिलते हैं।

मस्तिष्क ज्वर का विशिष्ट लक्षण गरदन का अकड़ा जाना है। शिशुओं के सिर का तालुरंध्र फूल जाता है। कभी-कभी मस्तिष्क की तंत्रिकाओं को हल्का लकवा-सा मार जाता है। कुछ मरीज़ों की त्वचा पर लाल चकते या धब्बे भी उभर आते हैं। हृदय की मांसपेशियों के प्रभावित होने से, दिल का धड़कना अनियमित हो जाता है। कभी-कभी शरीर के अन्य हिस्सों में अन्य संक्रामण भी होते हैं, जैसे निमोनिया आदि।

गंभीर अवस्था में तंत्रिका तंत्र पर गहरा प्रभाव पड़ता है। इससे मानसिक भ्रम व बेहोशी की आशंका बनी रहती है। बेहोशी व बुखार के कारण निर्जलन का खतरा भी बना रहता है और इससे उत्पन्न होने वाले शारीरिक आघात का भी। ऐसे में शरीर में पानी व ग्लूकोस की मात्रा बढ़ाना ज़रूरी हो जाता है।

चूंकि लक्षणों के आधार पर मस्तिष्क ज्वर को पहचानना आसान नहीं होता है, इसलिए मरीज़ के खखार, खून या तंत्रिका तंत्र के द्रव का परीक्षण किया जाता है।

मस्तिष्क ज्वर का इलाज़ एंटीबॉयटिक दवाओं से ही किया जाता है। गंभीर मामलों में ये दवाएं इंजेक्शन से सीधे खून में पहुंचाई जाती हैं।

वैसे अब कुछ अन्य दवाओं के अतिरिक्त मस्तिष्क ज्वर की वैक्सीन भी उपलब्ध है। यह वैक्सीन व्यक्ति को लगभग तीन साल तक सुरक्षित रख सकती है। पर यह भी कहा जाता है कि यह वैक्सीन बच्चों के लिए अधिक भरोसेमंद नहीं है। ●●●

हमारी पेशियां

हमारे शरीर में भी अनेक छोटे-छोटे अंग मिलकर इस प्रकार काम करते हैं, जैसे इंजन के पुर्जे। इनके बारे में जानना एक रोचक अध्ययन हो सकता है। आओ, इस बार प्रयोगशाला में हम शरीर को हिलाने वाले अंग,पेशियों के बारे में जानने के लिए कुछ प्रयोग करते हैं।

पेशियां हमारी त्वचा के नीचे होती हैं, लेकिन हम उन्हें हिलते हुए बाहर से भी देख सकते हैं—ठीक उसी प्रकार जैसे चादर ओढ़कर लेटा हुआ आदमी यदि हिलता-डुलता है तो हमें बाहर से पता चल जाता है। गाय, भैंस या घोड़े को चलते हुए कभी ध्यान से देखो। उनके पुट्ठों और कंधों पर त्वचा के नीचे हड्डी के अलावा कुछ मांसल रचनाएं हिलती हुई दिखाई पड़ेंगी। यही नरम मांसल रचनाएं **पेशियां** कहलाती हैं। शरीर की किन क्रियाओं से पेशियों का संबंध है—यह पता करने के कुछ छोटे-छोटे प्रयोग करते हैं।

अपने दाएं हाथ को सामने की ओर इस प्रकार सीधा करो कि हथेली ऊपर की ओर रहे। अब मुट्ठी बंद करो। जैसा कि चित्र में दिखाया गया है।

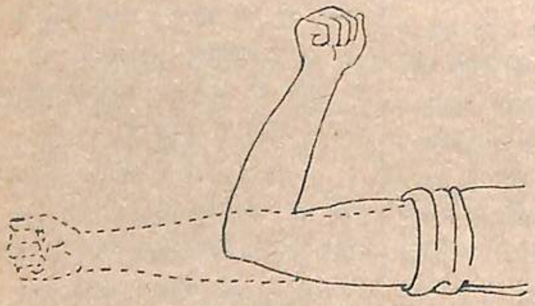

अब बांह को इस प्रकार मोड़ो कि मुट्ठी कंधे की ओर आए। जब मुट्ठी कंधे को छूने लगे तो बांह को फिर सीधा करो। ऐसा करते हुए दूसरे हाथ से दाईं भुजा की पेशियों को दबाओ। इस क्रिया को बार-बार दोहराओ और साथ ही यह देखो और महसूस करो कि तुम्हारी भुजा की पेशियां किस प्रकार हिलती हैं।

इस प्रयोग को इस प्रकार दोहराओ कि बांह तो ऊपर-नीचे हो लेकिन पेशियां नहीं हिलें। क्या तुम ऐसा कर पाए?

अब एक और प्रयोग करो जिसमें अपनी उंगलियों को चलाने वाली पेशियों को देख पाओगे। **क** चित्र में दिखाए तरीके से अपनी एक बांह सामने की ओर सीधी करो और उसकी हथेली नीचे की ओर रखो। फिर इस हाथ की उंगलियों को बारी-बारी से मोड़ो और खोलो। अब कोहनी और हाथ के बीच के भाग को देखो और हिलती हुई पेशियों का अवलोकन करो। अब **ख** चित्र की भांति अपनी बांह को सीधी रखकर अपनी उंगलियों को बारी-बारी से मोड़ो और खोलो। इन दोनों प्रयोगों के बाद ऐसी कोशिश करके देखो कि बिना पेशियों के हिले, उंगलियां मुड़ जाएं।

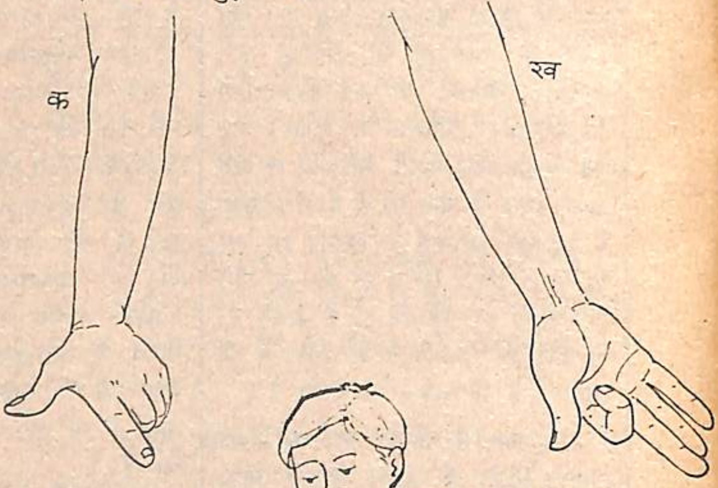

नीचे बैठकर अपनी टांग को मोड़ो। टांग की पिंडली को दोनों हाथों से कसकर पकड़ो और पैर को ज़मीन से थोड़ा ऊपर उठाओ (चित्र देखो)। अब अपने पैर के पंजे को तेज़ी से ऊपर-नीचे करो। देखो क्या पिंडली

की पेशियां हिलती हुई महसूस हुईं। क्या तुम इन पेशियों को बिना हिलाए पैर के पंजे को ऊपर-नीचे कर सकते हो?

अब खड़े होकर अपनी जांघ को अपने दोनों हाथों से कसकर पकड़ो और घुटना ऊपर उठाकर टांग को आगे-पीछे हिलाओ। जांघ की पेशियों का हिलना महसूस करो। यहां भी कोशिश करके देखो क्या पेशियों को हिलाए बिना टांग हिल सकती है?

इन प्रयोगों से अंगों के हिलने और पेशियों के बीच कोई संबंध समझ में आता है? वास्तव में पेशियां शरीर के अंगों को हिलाने में मदद करती हैं। शरीर के विभिन्न अंगों में पाई जाने वाली पेशियों को मिलाकर शरीर का पेशीतंत्र बनता है। उन सभी अंगों की एक सूची बनाओ, जिन्हें छूकर या हिला डुलाकर तुम पेशियों को महसूस कर सकते हो।

तुमने ऐसे बच्चों को देखा होगा जिनकी टांगें **पोलियो** नाम के रोग से कमज़ोर हो जाती हैं। सोचो ऐसा क्यों होता है?

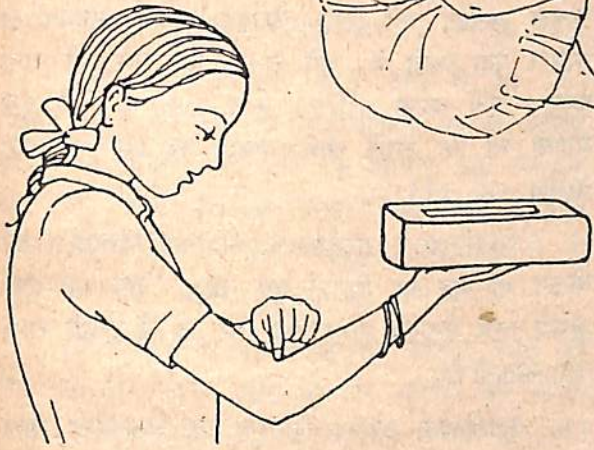

अधिकांश पेशियां हड्डियों से जुड़ी रहती हैं। कुछ पेशियां एक सिरे पर किसी एक हड्डी से जुड़ी रहती हैं और दूसरी ओर किसी अन्य हड्डी से लंबे व सफ़ेद तंतुओं द्वारा जुड़ी रहती हैं। इन तंतुओं को कंडरा कहा जाता है। अपने शरीर में कई स्थानों पर इन कंडराओं को महसूस कर सकते हो। अपनी हथेली पर चित्र की तरह एक ईंट या अन्य कोई भारी चीज़ रखो। बांह को कोहनी से मोड़ो और दूसरे हाथ की उंगली से कोहनी के अंदर वाले हिस्से को दबाओ। क्या तुम्हें रस्सी के समान एक गोल और कड़ी रचना महसूस हुई? यही है कंडरा!

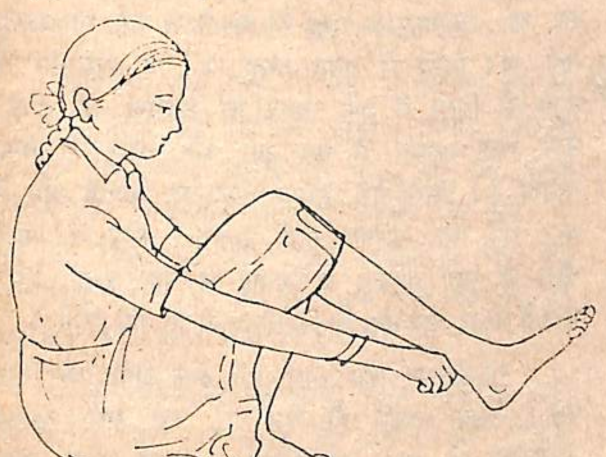

चित्रानुसार ज़मीन पर बैठकर अपनी एक टांग को घुटने पर समकोण बनाते हुए मोड़ो। टांग के पंज़े को ज़मीन से थोड़ा ऊपर उठाओ। दोनों हाथों से घुटने के नीचे की कंडराओं को महसूस करो। तुम्हारी एड़ी के ऊपर भी एक कंडरा है। ढूंढो तो!

(सामग्री तथा चित्र होविशिका की बालवैज्ञानिक कक्षा सात से साभार)

नन्हे गुदड़ीलाल के साहसिक कारनामे

गुदड़ीलाल का गुस्सा

फिङफिङ और गुदड़ीलाल शाला से ख़ुशी-ख़ुशी घर लौटे। यह देखकर मां को भी बड़ी ख़ुशी हुई। लेकिन शाम का भोजन करते समय एक अप्रिय घटना घटी।

शाम का खाना खाते समय फिङफिङ ने गुदड़ीलाल का नया कोट उतार दिया, फिर उसे सोयासॉस की बोतल के मुंह पर बिठा दिया। बोतल मेज़ के बीचोंबीच रखी हुई थी।

"तुम कुछ नहीं खाते। इसलिए अच्छा यह होगा कि तुम इस बोतल के मुंह पर चुपचाप बैठे रहो और हमें देखते रहो!" वह बोली।

सोयासॉस की बोतल काफ़ी लंबी और संकरी थी। गुदड़ीलाल ने नीचे देखा, तो उसका सिर चकराने लगा। उसने मन ही मन सोचा, 'हाय मां! मैं कितनी ऊंचाई पर बैठा हुआ हूं!' बोतल हिलती नज़र आ रही थी। वह गिरने से बहुत घबराता था। ठीक से बैठने के लिए वह ज्यों ही कुछ हिला, संतुलन खोकर पीछे की तरफ लुढ़क गया और बोतल से नीचे गिर पड़ा। गिरते ही उसके मुंह से एक चीख-सी निकली।

गुदड़ीलाल फिङफिङ के चावल के कटोरे में गिर पड़ा। बहुत से चावल मेज़ पर बिखर गए। फिङफिङ बहुत घबरा गई।

उसने जल्दी-जल्दी चावल समेट लिए और नाराज़ होकर गुदड़ीलाल से बोली, "तुमने यह अच्छा नहीं किया, गुदड़ीलाल। ज़रा देखो तो, तुमने कितने सारे चावल बरबाद कर दिए! किसान कितनी मेहनत से चावल पैदा करते हैं। हमें चावल का एक भी दाना बरबाद नहीं करना चाहिए। कल शाम पापा ने हमें बताया था कि अच्छे बच्चे चावल का एक भी दाना बरबाद नहीं करते।"

फिङफिङ ने गुदड़ीलाल को फिर सोयासॉस की बोतल के मुंह पर बिठाते हुए कहा, "इस बार तुम अच्छी तरह बैठना। अगर फिर गिरे, तो मैं तुम्हारे साथ नहीं खेलूंगी।"

गुदड़ीलाल बोतल के मुंह पर बैठा-बैठा सोच रहा था, 'कमाल हो गया है! पहले मैं ज़रा भी बहादुर नहीं था। गिरने से बहुत डरता था। पर इस बार तो ऊपर से गिरने में मुझे ज़्यादा डर महसूस नहीं हुआ। उल्टे मज़ा आया! मैं एक बार और ऊपर से गिरना चाहता हूं। इससे मेरी हिम्मत और बढ़ जाएगी और मैं बंदर की तरह छलांग लगा सकूंगा। अब मैं किसी चीज़ से नहीं डरता। मैं ऊंचाई से नहीं डरता, गिरने से नहीं डरता, यहां तक कि फिङफिङ से भी नहीं डरता।'

गुदड़ीलाल कुछ आगे की ओर झुका और कूद पड़ा। उसके कूदते ही मेज़ पर पड़ा सारा सामान अस्तव्यस्त हो गया। गुदड़ीलाल ने कूदते समय इतना

ज़ोर लगाया कि सोयासॉस की बोतल भी लुढ़क गई। वे दोनों ही फिङफिङ के चावल के कटोरे से टकराए। कटोरा नीचे गिर पड़ा। चावल फ़र्श पर बिखर गए।

इस बार फिङफिङ बहुत गुस्से में आ गई। उसका चेहरा तमतमा उठा। अध्यापिका श्याओ अक्सर बच्चों को बताती रहती थी कि चावल का एक-एक दाना पैदा करने के लिए किसानों को कितनी मेहनत करनी पड़ती है। पर इस बेवकूफ़ गुदड़ीलाल ने तो कटोरे के सारे चावल बरबाद कर दिए थे।

फिङफिङ ने गुदड़ीलाल को उठाकर पढ़ाई की मेज़ पर रख दिया और फटकार सुनाती हुई बोली, "तुम सचमुच निहायत बेवकूफ हो! तुमने मेरी बात नहीं मानी और सारे चावल बरबाद कर डाले!"

फिङफिङ को गुस्से में देख गुदड़ीलाल का भी पारा चढ़ गया। उसे फिङफिङ से यह उम्मीद नहीं थी कि इस छोटी-छोटी ग़लती के लिए वह उसे इतनी डांट-फटकार लगाएगी। थोड़े से चावल गिर गए, तो कौन सी आफ़त आ गई? गुस्सा दिखाने के लिए वह पढ़ने-लिखने की मेज़ पर लेट गया, यह सोचकर कि फिङफिङ उसे ज़रूर उठा लेगी।

लेकिन फिङफिङ ने उसकी तरफ बिलकुल ध्यान नहीं दिया। उसने अपनी मां के साथ मिलकर चावल का एक-एक दाना फ़र्श से उठाकर कटोरे में डाल दिया। मां ने चावल के दानों को उबलते पानी से धोया और फिर एक बार फिङफिङ को परोस दिया।

खाना खाने के बाद, फिङफिङ टेबिल-लैंप के पास जाकर किताब पढ़ने लगी। उसने गुदड़ीलाल की तरफ देखा ही नहीं। यह देखकर गुदड़ीलाल का पारा चढ़ता गया।

पर जब सोने का समय आया, तो फिङफिङ ने गुदड़ीलाल को पलंग पर लिटा दिया और उसे लिहाफ़ में लपेटती हुई बोली, "गुदड़ीलाल, बाद में ऐसा न करना। मैं तुम्हें फिर एक बार याद दिलाना चाहती हूं कि चावल का एक-एक दाना बड़ा कीमती है। हमें चावल का एक भी दाना बरबाद नहीं करना चाहिए।"

पर गुदड़ीलाल उसकी बात मानने को बिलकुल तैयार नहीं था। " 'कीमती' से क्या मतलब है?" वह मन ही मन सोचने लगा। 'यह लड़की अकारण ही तिल का ताड़ बना रही है। ठीक है, अब मैं भी उसके साथ कोई संबंध नहीं रखूंगा।'

फिङफिङ ने जब यह देखा कि गुदड़ीलाल अब भी गुस्से में है, तो उसे हंसी आ गई। "गुदड़ीलाल, ज़रा इधर तो देखो," उसने कहा। "इतनी नाराज़गी क्यों दिखा रहे हो? मैं मानती हूं कि मैंने भी ग़लती की है। मुझे इतना गुस्सा नहीं दिखाना चाहिए था। फिर भी तुम्हें यह मालूम होना चाहिए कि...।"

"यह फिर मुझे नसीहत देने लगी है। मैं इसकी

बात हरगिज़ नहीं सुनूंगा।' गुदड़ीलाल मन ही मन बोला। 'मैं इसकी बात हरगिज़ नहीं सुनूंगा। मैं कान बंद कर लेता हूं। बाघ और बंदर बिलकुल ठीक कहते हैं कि लड़कियां अच्छी नहीं होतीं। वे अक्सर तिल का ताड़ बना देती हैं। अगर मैं किसी लड़के के साथ होता, तो निश्चय ही ऐसी बात न होती। इतनी छोटी-सी बात के लिए वह लड़का मुझ पर इतना गुस्सा हरगिज़ न दिखाता। मैं यहां से चला जाऊंगा! दूर चला जाऊंगा! तओतओ के पास चला जाऊंगा! हालांकि वह मुझे पसंद नहीं करता, फिर भी वह एक लड़का तो है।'

रिक्शागाड़ी से रेलगाड़ी में

गुदड़ीलाल ने पक्का इरादा कर लिया कि वह फिङफिङ का साथ छोड़ देगा। दूसरे दिन फिङफिङ गुदड़ीलाल को अपने साथ शाला ले गई। उस समय उसे भागने का मौका नहीं मिला। शाम को जब घर लौट रहे थे, तो रिक्शागाड़ी में फिङफिङ की जेब में बैठा-बैठा वह भागने की तरकीब सोचने लगा।

उसने सोचा, अगर मैं किसी तरह फिङफिङ की जेब से नीचे गिर जाऊं, तो रिक्शागाड़ी में फिर एक बार शाला पहुंच जाऊंगा। वहां पहुंचकर मैं तओतओ की खोज शुरू कर दूंगा। पर यह काम मुझे बड़ी सफ़ाई से करना चाहिए, जिससे फिङफिङ को बिलकुल पता न चले। अगर पता चल गया, तो वह मुझे हरगिज़ नहीं जाने देगी। सवाल है, इस तरकीब पर अमल कैसे किया जाए?

उसने फिङफिङ की जेब से अपना सिर बाहर निकाला। रिक्शागाड़ी में केवल तीन बच्चे बाक़ी रह गए थे। तीनों एक ही ब्लॉक में रहते थे।

तभी रिक्शागाड़ी रुक गई। ड्राइवर ली चाचा ने सबसे पहले छोटे बच्चे को नीचे उतारा। वे दूसरे बच्चों को उतारने ही वाले थे, कि छोटे बच्चे के रोने की आवाज़ सुनाई दी। वह बरफ़ पर गिर पड़ा था। ज्यों

ही फिङफिङ ने रोने की आवाज़ सुनी, वह एकदम रिक्शागाड़ी से नीचे उतर गई।

'यह मेरे लिए एक अच्छा मौका है!' गुदड़ीलाल ने मन ही मन सोचा। 'अगर मैं ज़रा भी बहादुरी दिखाऊं, तो इस लड़की से पिंड छुड़ा सकता हूं।'

फिङफिङ के नीचे कूदते समय गुदड़ीलाल उसकी जेब से रिक्शागाड़ी में गिर पड़ा। तब तक ड्राइवर ली चाचा बच्चे को उठा चुके थे। फिङफिङ उसके कपड़ों से बरफ़ झाड़ने लगी।

"रोओ मत," उसने बच्चे को ढाढ़स बंधाते हुए कहा। "आओ, हम दोनों एक साथ घर चलते हैं।"

ली चाचा ने छोटे बच्चे की उंगली पकड़ ली और उसे फाटक तक पहुंचा आए।

ली चाचा रिक्शागाड़ी में लौट आए और शाला की तरफ चल पड़े। गुदड़ीलाल पर उनकी नज़र बिलकुल नहीं पड़ी।

फिङफिङ को भी बिलकुल पता नहीं चला कि गुदड़ीलाल उसकी जेब से गिर गया है।

रिक्शागाड़ी खाली हो चुकी थी और वह बड़ी तेज़ रफ्तार से चल रही थी। गुदड़ीलाल मन ही मन बहुत खुश था।

'अब तो मैं तओतओ को अवश्य खोज निकालूंगा,' उसने सोचा।

वह मन ही मन मुस्करा रहा था। ज्यों ही रिक्शागाड़ी सड़क के एक मोड़ पर पहुंची, गुदड़ीलाल संतुलन खो बैठा और फिसलकर सीट के नीचे गिर गया।

कुछ समय बाद रिक्शागाड़ी फिर एक बार रुक गई। गुदड़ीलाल को ली चाचा के पैरों की आहट सुनाई दी। पर धीरे-धीरे वह आहट कम होती गई। वे जा चुके थे।

'अब क्या होगा?' बेचारा गुदड़ीलाल सोच में पड़ गया। 'शायद मुझे आज रात रिक्शागाड़ी में ही रहना पड़ेगा।'

अब उसकी खुशी ग़ायब हो चुकी थी। उसे डर लगने लगा था। अंधेरा हो चला था। कोट के अंदर भी उसे ठंड महसूस हो रही थी। बदन को गेंद की तरह सिकोड़कर वह चुपचाप सीट के नीचे लेट गया।

'कोई बात नहीं,' उसने सोचा। 'आज रात यहीं सो जाऊंगा। कल सुबह चाचा आएंगे, तो उनके साथ तओतओ के पास चला जाऊंगा। जैसे भी हो, अंत में उसे अवश्य खोज लूंगा।'

अब गुदड़ीलाल को ज़्यादा परेशानी नहीं हो रही थी। कुछ ही देर में उसकी आंख लग गई। रिक्शागाड़ी के चलने से अचानक उसकी नींद खुल गई। रिक्शागाड़ी फिर कहां जा रही है? क्या उसे तओतओ फिर मिल पाएगा?

कुछ देर चलने के बाद रिक्शागाड़ी मोड़ पार करके एक बड़े-से फाटक के अंदर चली गई। रिक्शागाड़ी की खिड़की से रोशनी अंदर आने लगी। रोशनी इतनी तेज़ थी कि गुदड़ीलाल की आंखें चौंधिया गईं। पर थोड़ी ही देर में फिर अंधेरा छा गया और रिक्शागाड़ी रुक गई।

गुदड़ीलाल के कानों में लोगों के बोलने, इंजन के चलने और लोहे के टकराने की आवाज़ें पड़ने लगीं।

गुदड़ीलाल कुछ भी नहीं समझ पा रहा था। उसे केवल नट-बोल्ट निकाले जाने की आवाज़ सुनाई पड़ रही थी। अचानक उसे ठंड महसूस होने लगी। उसने ऊपर की तरफ देखा तो हैरान रह गया। ऊपर असंख्या तारों से भरा आसमान लटक रहा था।

ली चाचा ने रिक्शागाड़ी की बॉडी हटाने के बाद उसकी सीटें भी हटा दीं। इस तरह वह एक रिक्शाठेले में बदल गई। गुदड़ीलाल उसके बीचोंबीच लेटा हुआ था।

वह परेशान होकर चिल्लाया, "ली चाचा, मैं यहां हूं!"

पर शोरगुल के बीच ली चाचा को उसकी आवाज़ नहीं सुनाई दी। वे एक तरफ मुड़कर दूर चले गए।

कुछ देर बाद ली चाचा चार छोटे पायों वाली एक काली-सी लोहे की चीज़ उठा लाए। उसे उन्होंने रिक्शाठेले पर लाद लिया। दबने से बचने के लिए गुदड़ीलाल फुर्ती से एक तरफ हट गया। फिर भी उसका नया कोट किसी चीज़ से अटककर गायब हो गया। काफ़ी खोजबीन करने पर भी वह उसे नहीं मिल पाया।

कुछ और भारी-भरकम चीज़ें रिक्शाठेले में लाद दी गईं। फिर ली चाचा उसे चलाने लगे।

गुदड़ीलाल ने सामने नज़र डाली, तो तीन बड़े-बड़े ट्रक दिखाई दिए। उनकी तेज़ रोशनी सड़क पर पड़ रही थी। उसने पीछे देखा। उसके रिक्शाठेले के पीछे उसी तरह के बहुत से रिक्शाठेले चल रहे थे। इस तरह गाड़ियों का एक लंबा-सा काफ़िला बन गया था।

गुदड़ीलाल ठंड से ठिठुरता जा रहा था। रिक्शाठेला बहुत-सी काली चीज़ों से भरा पड़ा था। उनमें कोई भी चीज़ ऐसी नहीं थी जो एक भी शब्द बोल सकती हो।

मूल लेखक : सुन यओच्युन
अनुवादक : जानकी एवं श्यामा बल्लभ
सभी चित्र : शन फेई

(1)

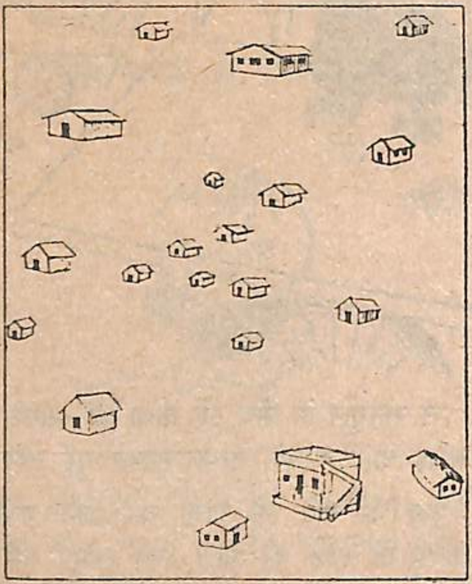

चित्र में 22 घरों की एक कालोनी है। सभी लोग अपने घरों के आसपास तार की फ़ेंसिंग बनाना चाहते हैं। सब चाहते हैं कि यह काम सस्ते में हो जाए। यह भी चाहते हैं कि फ़ेंसिंग सीधी रेखाओं में हो। क्या तुम कुछ मदद कर सकते हो। यह याद रखना कि हर घर के चारों तरफ फ़ेंसिंग चाहिए।

(2)

तीन बैलगाड़ियों की दौड़ में एक बैलगाड़ी दूसरी से 15 किलोमीटर प्रति घंटा कम तथा तीसरी से 3 किलोमीटर प्रतिघंटा अधिक वेग से दौड़ शुरू करती है और मंजिल पर पहली से 12 मिनट बाद तथा तीसरी से 3 मिनट पहले पहुंचती है। रास्ते में कहीं भी रुकना नहीं था।

बताना यह है कि—

1. पथ कितना लंबा है?
2. हर बैलगाड़ी का वेग कितना है?
3. प्रत्येक बैलगाड़ी कितनी देर तक चलती रही।

(3)

समुद्र में एक युद्धपोत और गश्ती नाव को एक ही दिशा में साथ-साथ छोड़ा गया। युद्धपोत की गति 40 किलोमीटर प्रति घंटा और नाव की गति 60 किलोमीटर प्रतिघंटा है। नाव का काम युद्धपोत के आगे जाकर टोह लेना है। नाव से यह भी कहा गया कि वह 3 घंटे में लौट आए। युद्धपोत छोड़ने के कितने समय बाद उसे वापस मुड़ना चाहिए?

(4)

संख्या 46 तथा 96 में एक रोचक विशेषता है : इनमें से प्रत्येक अंक की आपसी जगहें बदल दी जाएं, तो भी उनका गुणनफल पहले जैसा ही रहता है—करके देख लो,

$$46 \times 96 = 4416$$
$$64 \times 69 = 4416$$

क्या तुम ऐसी और संख्याओं को ढूंढ सकते हो? और कैसे?

(5)

यह भी एक बस्ती का नक्शा है, उसमें बने हुए वर्ग घरों को दर्शाते हैं और उनमें लिखे हुए नंबर उसमें रहने वाले लोगों की संख्या बताते हैं। बस्ती की पंचायत, पूरी बस्ती को आठ भागों में बांटना चाहती है। पर यह भी चाहती है कि प्रत्येक भाग में लोगों की कुल संख्या भी 14 होनी चाहिए। तुम भी अपना दिमाग लगाओ।

4	8	4	2	7	6
7	3	10	8	4	1
3	4	1	2	3	4
2	8	5	3	6	7

(6)

कुछ शहरों में पहले साइकिलों का लायसेंस भी बनता था। ऐसे ही किसी एक शहर में छह अंकों वाला नंबर लगता था।

एक आदमी ने साइकिल ख़रीदी। वह थोड़ा अंधविश्वासी था। उसे आठ के अंक से खासी चिढ़ थी। उसने सोचा यदि साइकिल के नंबर में भी अंक आठ होगा तो उसे मुश्किलों का सामना करना पड़ेगा। जब वह लाइसेंस बनवाने जा रहा था तो उसने अपने मन को निम्न तर्क से सांत्वना देने की कोशिश की। कोई भी संख्या दस अंकों - 0,1,....9 की सहायता से लिखी जाती है, इसमें आठ सिर्फ़ एक बार आता है, यानी आठ के आने की संभावना दस में केवल एक है।

क्या उसका तर्क सही है?

(7)

दो अंकों की ऐसी संख्या ढूंढो - जिसका दहाई का अंक इकाई के अंक से 4 कम है। यदि इन अंकों को उल्टे क्रम में लिखकर प्राप्त संख्या से पहले वाली संख्या घटाई जाए, तो 27 मिलेगा।

पहेलियां

एक सुनहरा चिकना पत्थर
संग छूटे तो जाए मर!
देखो तन की मूरत इसमें
पहचानो निज मन का मरमर!

□

एक सींग की ऐसी गाय
जितना दो उतना ही खाए!
खाते खाते गाना गाए
पेट नहीं उसका भर पाए!

□

वर्ग पहेली - 28 : हल

बाएं से दाएं : 1. मेघनाद साहा 4. पास 7. चाक 8. सहजीवन 11. टका 12. हराना 13. पागल 15. होनी 16. परावर्तन 19. बम 21. लट 22. अरबसागर।

ऊपर से नीचे : 1. मेड़ 2. नाक कटना 3. सरस 5. सहनशीलता 6. भाजी 9. हरा 10. चहलपहल 13. पानी बरसा 14. शर्त 17. वश 18. नगर 20. पार।

वर्ग पहेली - 29

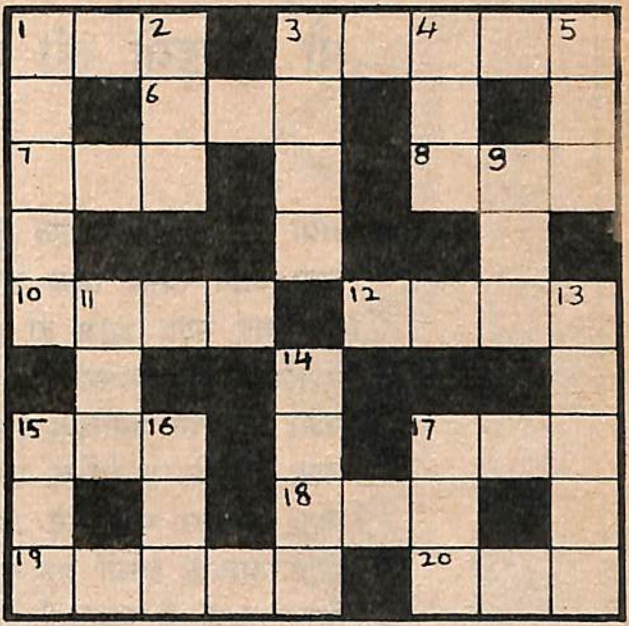

संकेत : बाएं से दाएं

1. पेशगी शायद नायाब (3)
3. सतुल दासी में संशोधित रचियता (5)
6. भोजन में स्वाद के लिए अजीब का सिर (3)
7. कपट उल्टा गिरा! (3)
8. केलन शायद नाक में लगे (3)
10. अयोग्य नाक में आग का पर्याय (4)
12. तन्मय (4)
15. तरुण, लाखन और कमाल के सिर मिलें तो संबंध विच्छेद (3)
17. मातम गायन में पदक (3)
18. जाना (3)
19. वातावरण - पर्याय की तरह शुरू होता है (5)
20. जुलाहा धुनता है जिसे (3)

संकेत : ऊपर से नीचे

1. लाल ना बट, जैसे-तैसे विपत्ति का हल जाना (2, 3)
2. चना सिक रहा शहर में (3)
3. राका तुम संत बन जाओ (4)
4. एक मछली न! नमी तो होगी ही (3)
5. पानी (3)
9. चाय का बर्तन (3)
11. जिधर से भी देखो यह प्यारा है (3)
13. ... न बजेगी बांसुरी (1, 2, 2)
14. पराजय और गणतंत्र मिलें आधे-आधे तो होगी पौधों में प्रजनन की एक क्रिया (4)
15. उल्टी सीधी पड़त की छटपटाहट (3)
16. क्लॉक टावर में - कांटछांट (3)
17. थोड़ा-सा (3)

सौ बुराइयों की एक बुराई—नशापान

- ☐ क्या आप खुशी चाहते हैं?
- ☐ क्या आप स्वस्थ रहना चाहते हैं?
- ☐ तो आप नशा आज ही छोड़ दीजिए।
- ☐ नशा आपके स्वास्थ्य को ख़राब करता है।
- ☐ नशा आपकी आर्थिक हालत को तहस नहस कर देता है।
- ☐ नशा आपके शारीरिक एवं मानसिक विकास को रोकता है।
- ☐ नशा परिवार में झगड़े कराता है।
- ☐ नशा आपके बच्चों पर बुरा असर डालता है।
- ☐ आप आज ही नशामुक्ति केंद्र एवं परामर्श केंद्र पहुंचे।

नशामुक्ति और परामर्श केंद्रों के पते ये हैं :

- नवजीवन नशामुक्ति केंद्र, गांधी भवन, श्यामला हिल्स, भोपाल, म.प्र.
- नवयुग परामर्श केंद्र, 387/3, शक्ति नगर, भोपाल, म.प्र.
- व्यसन मुक्ति केन्द्र 131/12, महाराणा प्रताप नगर, ज़ोन-2, भोपाल, मध्यप्रदेश
- नशामुक्ति परामर्श केंद्र, 64 प्रेमनगर, ग्वालियर, म.प्र.
- जागृति परामर्श केंद्र, उज्जैन, मध्यप्रदेश.
- नशामुक्ति केंद्र, रेडक्रॉस सोसायटी, इंदौर, -मध्यप्रदेश।

इन केंद्रों में निःशुल्क सेवाएं दी जाती हैं।
नशे से मुक्त होने वाले व्यक्ति की जानकारी गोपनीय रखी जाती है।
अधिक जानकारी के लिए पंचायत एवं समाज सेवा संचालनालय, 1250, पुराना कृषि भवन, तुलसी नगर, भोपाल से संपर्क करें।

अच्छा स्वास्थ्य - सुखी जीवन

ज.सं.सं.

दीपक कुमार जैन, दसवीं, भोपाल

संध्या व्यास, चौथी, भोपाल

चकमक

पंजीयन क्रमांक 1317/सी/85 के अंतर्गत भारत के समाचार-पत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा पंजीकृत।
डाक पंजीयन क्रमांक BPL/DN/MP/431/90

प्रियंका भागवत, सात वर्ष, भोपाल

रेक्स डी रोजारियो की ओर से विनोद रायना द्वारा भंडारी ऑफसेट प्रिंटर्स, भोपाल से मुद्रित एवं एकलव्य, ई-1/208, अरेरा कॉलोनी, भोपाल-462 016 से प्रकाशित।
संपादक : विनोद रायना।